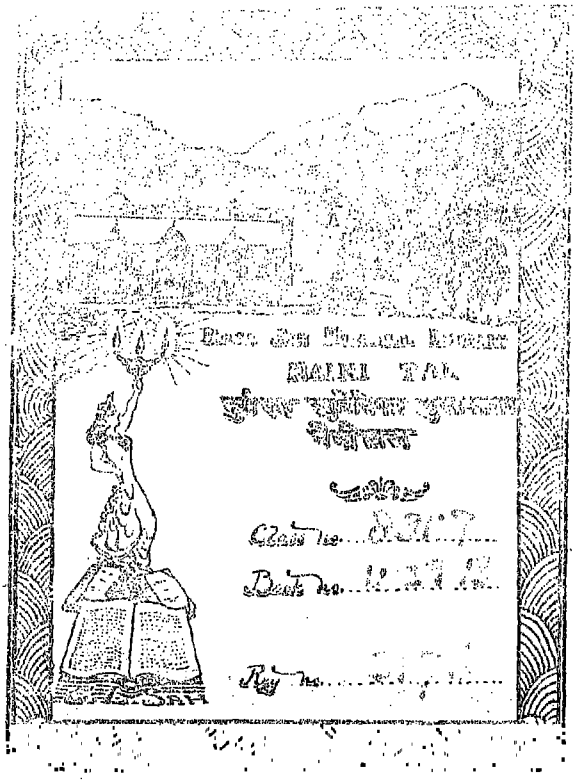

Durga Sah Municipal Library
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
नैनीताल
Class No.
Book No.
Received

मैय्या केचुलबदल

(हास्यरस प्रधान व्यङ्ग-पत्र)

लेखक

श्री पं० उमादत्त सारस्वत 'दत्त'

साहित्याचार्य

प्रकाशक

हिन्दी प्रचारक मंडल

लखनऊ

प्रकाशक
पं० रामदास मिश्र
अध्यक्ष
हिन्दी प्रचारक मण्डल
कैलाश भवन,
पक्षियारी मंडी, लखनऊ

प्रथम-संस्करण २०००

१९५४

मूल्य १॥)

मुद्रक
लखनऊ प्रिंटिंग हाउस,
अमीनाबाद, लखनऊ

'मस्तराम का चिट्ठा' का प्रथम संस्करण हिन्दी प्रचारक मण्डल ने प्रकाशित किया था। हिन्दी-संसार ने उसे इतना अपनाया कि उसका प्रथम संस्करण बहुत जल्दी समाप्त हो गया। हिन्दी प्रचारक मण्डल, लखनऊ ने उसका दूसरा भाग निकालना चाहा, परन्तु दूसरा भाग उसी नाम से निकालने के बजाय 'भैया कँचुलबदल' ही प्रकाशित करना अच्छा समझा गया, अतः आज भैया कँचुलबदल' आपके सम्मुख है।

'मस्तराम का सोटा' मधुर मन्दिर, हाथरस ने प्रकाशित किया था। उसमें द्विवेदी युग के २६ प्रमुख कवियों की कविताओं की व्यंग-समालोचनायें हैं। उक्त पुस्तक इतनी लोकप्रिय सिद्ध हुई कि उसके बहुत जल्दी २ दो-तीन संस्कर निकालने पड़े, और ऐसे समय पर निकाले गए जबकि कागज का मिलना एक प्रकार से असम्भव ही हो रहा था।

इन्हीं बातों से उत्साहित होकर तथा कुछ हिन्दी-प्रेमियों के विशेष आग्रह से मैंने इधर जल्दी जल्दी कई लेख लिखे। सभी लेख सामयिक तथा स्वतन्त्र-भारत के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। एक प्रजातन्त्र राज्य के लिये निर्वाचन सम्बन्धी बातों का जानना प्रत्येक नागरिक के लिये परमावश्यक है। यही कारण है कि चुनाव सम्बन्धी लेख इसमें अधिक हैं। गत आम

चुनाव के समय पर मतदाताओं में जागरूकता पैदा करने के उद्देश्य से ही यह लेख लिखे गये थे। प्रायः सभी लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं और पुरस्कृत भी हैं।

भारत जैसे अशिक्षित देश के लिये तो यह और भी आवश्यक है कि किसी प्रकार से 'वोटर' को कम से कम इतना बोध तो अवश्य ही करा दिया जाय, जिससे वह ऐसे उम्मीदवारों को पहचान सके जिनके चुन जाने से देश के लिये खतरा पैदा हो जाने का अन्देशा हो। इन लेखों में जनता को ऐसे उम्मीदवारों से सचेत रहने के लिये संकेत किया गया है। साथ ही ऐसे उम्मीदवारों को भी सब प्रकार से हतोत्साह करने का प्रयत्न किया है, ताकि जिस पद के लिये वे सर्वथा अयोग्य हैं, उसके समीप भी न फटकें। सच ही है—

'बिच्छू मंत्र न जानही सांप पिटारी हाथ।'

प्रायः यह देखा गया है कि स्वार्थवश कुछ लोग ऐसा बौखला उठते हैं कि जिससे वे न तो अपनी पार्टी तथा दल का ही सम्मान रख पाते हैं और न अपने स्वाभिमान की ही रक्षा कर पाते हैं। आज इस पार्टी में हैं तो कल दूसरी में। स्वार्थ-साधन ही उनका एक-मात्र लक्ष्य रहता है। अतः ऐसे लोगों से जनता जितना ही दूर रहे उतना ही अच्छा है।

कविता का प्राण 'कल्पना' है। इसी प्रकार गद्य का प्राण है। व्यंग को आप अत्यन्त तीक्ष्ण भाले से बढ़कर समझें। यह वह घाव है, जिसका इलाज ही नहीं। व्यंग-बाण सहन करना शक्ति से बाहर की बात है। अतः जहां सब प्रकार की औषधियां असफल हो रही हों, वहां व्यंग ही का 'इन्जेक्शन' देना ठीक है।

जब तक देश परतन्त्र था, तब तक सभी कुछ क्षम्य था। परन्तु स्वतंत्र-भारत के लिये स्तर से गिरी कोई भी बात होना मानो देश के हित में विष बोना है। 'होली' हिन्दुओं का सर्वश्रेष्ठ तथा पवित्रतम पर्व है, परन्तु दुख की बात है कि इसी पर्व पर हिन्दुओं का नग्न-नृत्य भी अपनी पराकाष्ठा को पहुँच जाता है। मोरियों का कीचड़ उछालना, मल-मूत्र से भरे हुये घड़ों को सीधे-सादे मनुष्यों के सर पर रखकर फोड़ देना, तारकोल तथा मिट्टी के तेल से लोगों का मुंह पोतना इत्यादि बातें इस पर्व पर ऐसी होती हैं, जिन्हें देखकर सच्चे भारतीय का मस्तक लज्जा से झुक जाता है। इतना ही नहीं, अपनी ही बहू बेटियों तथा बहनों के सामने ऐसे-ऐसे अश्लील तथा फूहड़ गाने गाये जाते हैं—जिन्हें असभ्य से असभ्य जंगली मनुष्य के कान सुनने को तैयार नहीं होते। 'अररर कबीर' के साथ ही छुरी-बुरी गालियों के गोले छूटने लगते हैं। इन कुप्रथाओं को दूर करना प्रत्येक भारतीय का परम कर्तव्य है। इसी विचार से इसमें होली से सम्बन्धित कई चिट्ठे हैं। उनपर जबर्दस्त व्यंग किये गये हैं। ऐसे व्यंगों की पैनी धार से भी यदि लोगों के कुहृदय न कटे या कठोर हृदय न पिघले तो समझिये देश का दुर्भाग्य ही है।

इन चिट्ठों में आये हुये सभी नाम कल्पित हैं। मेरा किसी से भी किसी प्रकार का व्यक्तिगत द्वेषभाव नहीं है। किसी को भी लक्ष्य करके कोई बात नहीं लिखी गई है, फिर भी यदि कोई महाशय भड़कते हों और यह समझते हों कि उन्हीं के विषय में यह बातें लिखी गई हैं, तो ऐसी समझ के लिये लेखक मजबूर है। कहा भी है—

जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥

व्यंगसाहित्य एक प्रकार का दर्पण तो है ही, जिसका जैसा मुंह

होगा वैसा ही तो दर्पण में दिखलाई देगा। इसमें न तो साहित्य का और न लेखक का--किसी का भी--दोष नहीं है।

युगुल जोड़ी शीर्षक लेख में बेमेल विवाहों के रोकने के लिये बुढ्ढों की हंसी उड़ाई गई है तो 'बीबी और बाबू' में आज-कल की श्रीमतियां अपने पतियों के साथ जैसा दुर्व्यवहार करती हैं उसका दिग्दर्शन कराया भी गया है। इसी प्रकार अध्यापकों की दयनीय दशा का चित्र खींचने का भी प्रयत्न किया गया है। यदि इन व्यंग-पत्रों से समाज का कुछ भी उद्धार हो सका तो मैं अपना श्रम सफल समझूंगा। इससे अधिक मुझे और कुछ नहीं कहना है। आशा है 'सन्त-हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि-विकार' के अनुसार इसे भी हिन्दी-जगत अपनाने की कृपा करेगा।

एक बात और। बहुत से सज्जनों ने 'मस्तराम जी का चिट्ठा' तथा मस्तराम जी का सोंटा के सम्बन्ध में अपनी अमूल्य सम्मतियां समय-समय पर भेजी हैं, उन सबका मैं हृदय से आभारी हूं।

किमधिकम्।

माधव-कवि-निवास,
बिसवाँ (सीतापुर)
ता० १ अप्रैल १९५४ ई०

विनीत—
उमादत्त सारस्वत

समर्पण

यह पुस्तक

'अलक्षण'—नहीं भैया—'एलेक्शन'

के

चतुर खिलाड़ियों

की

सेवा में

सादर, सस्नेह समर्पित है।

शीघ्र प्रकाशित हो रही है

सैलानी

लेखक

श्री रामदास मिश्र 'विजय'

सरस हास्यरस, रहस्यपूर्ण, यथार्थवादी औपन्यासिक गाथा

मूल्य ३॥)

पता:— हिन्दी प्रचारक मंडल

कैलाश भवन, घसियारी मंडी

लखनऊ ।

भैय्या केंचुल बदल

पहिला चिट्ठा

हे हे सम्पादक जी महराज !

जय पोंगा पंडित की।

पोंगा पंडित का ना सुनकर आप चौंकियेगा नहीं। जो हजरत पक्के सवासत्तर मन की गठरी चौबीसों घंटे अपनी खल्वाट खोपड़ी पर लादे रहते हों, धर्म का बोझा ढोते-ढोते जिनका कचूमर निकल गया हो, या जो धर्म की दुम में चिपटे हुये घसिटते चले जा रहे हों, फिर भी 'धर्म' की दम न छोड़ते हों—उनकी यदि जय न बोली जाय तो सरासर कृतघ्नता होगी या नहीं ?

अभी उस दिन एक शिवालय में एक हरिजन महाशय शिवजी की वन्दना कर रहे थे, उनको देखकर यह हजरत उन पर ऐसा झपटे कि मानो कौवा आपकी नाक ही लेकर उड़ गया हो। आव देखा न ताव, इस झड़ाके से उन पर प्रहार किया कि खुदही चारों खाने चित हो गये। बड़ी कठनाई से वे हरिजन महाशय उनको होश में ला सके।

उठते ही लगे गालियों द्वारा स्वस्ति-वाचन करने। मुँह क्या था, बिलकुल नरक कुँड। जिस प्रकार ज्वालामुखी पर्वत से बात की बात में अंगारे निकलने लगते हैं, उसी प्रकार आप के पोंगा पंडित भी दनादन गालियों के गोले निकालने लगे। पोंगा पंडित का पोपला मुंह यदि उस समय आप देखते, तो सत्य मानिये सम्पादक जी आप हँसते-हँसते कलाबाजी अवश्य ही खा जाते।

लगे रह-रह कर चिड़ियों के घुरघुच के समान चुटैया पर हाथ फेरने; मानो बेचारे चुटैया को आज समूल ही उखाड़ कर फेंक देंगे। कहने लगे — "हाय, शिव जी भ्रष्ट हो गये। हाय रे! इस कलयुग में जो कुछ न हो जाय वह थोड़ा ही है। गया अब संसार रसातल को! एक चमार में इतना साहस कि वह मन्दिर में प्रवेश करे! कहाँ हो भगवान! बचाओ हिन्दू धर्म को"—इत्यादि इत्यादि

सत्य मानिये सम्पादक जी! उस दिन कड़ाके की सर्दी होने पर भी पोंगा पंडित ने इक्कीस बार देह खुर्च खुर्च कर स्नान किया आप सम्पादक हैं तो क्या हुवा? आप में इतना साहस, कि आप इन तोंदधारी हजरत से पूछ सकें कि भैया!, जिन शिव जी के स्मरण मात्र से जन्म-जन्म के पाप छूट जाते हैं, वे किसी व्यक्ति-विशेष के द्वारा भ्रष्ट कैसे हो सकते हैं!

हाँ तो क्या आप इन हजरत के विषय में सचमुच विस्तृत रूप से जनाना चाहते हैं? तब तो मस्तराम जी की राय है कि आप एक दम से बुढ़िया पुराण की शरण में जायं। उसके पन्ने आपने उलटे नहीं कि पोंगा पंडित की चलती-फिरती तस्वीर आप के सामने आ जायगी। यदि आप अपने स्वर्गस्थ पूर्वजों को कुछ खिलाना-पिलाना चाहते हैं तो पोंगा पंडित द्वारा यह कार्य आप अत्यन्त सरलता पूर्वक करवा सकते हैं। दें आप इनको और पहुँच जाय वह वस्तु पल मात्र में उनके पास। अजी क्या मजाल कि बिना तार का तार भी इतनी शीघ्रता दिखला सके! यदि आपकी ग्रह-दशा खराब है तो सिवाय पोंगा पंडित के और किसमें इतनी शक्ति है जो आपको उन दुष्ट ग्रहों से छुटकारा दिला सके।

हाँ इसके लिए पोंगा पंडित की भाँग बूटी की व्यवस्था आप

को अवश्य ही करनी पड़ेगी ।

क्या कहा ? पोंगा पंडित का पूर्ण माहात्म्य सुनने की आपकी बड़ी इच्छा है ! तो लीजिये हाथ में सुपारी-चावल और सुनिये—

जिसका घुटा हुआ सर शीशे की तरह चमकता हो तथा हर समय जो सुगन्धित तेलों से पुता रहता हो। उसे ही पोंगा पण्डित समझिये।

जिसका पेट नगाड़ानुमा हो, जो मस्तक रंगने में करवा-चौथ को मात करता हो जिसके शरीर पर आपने कभी भी मैली धोती के सिवा और कोई वस्त्र न देखा हो तथा जो बात बात में खीसें निपोर देता हो वही पूर्ण पोंगा पंडित

जो शबरी, प्रह्लाद, अजामिल आदि पतितों की कथा बड़ी ही भक्ति से—सर झटक-झटक कर—दूसरों को सुनाता हो, परन्तु 'हरिजन-मन्दिर- प्रवेश' का नाम सुनकर जो ऐसा चौंक पड़ता हो, जैसे बैल बाजे को सुनकर–तो उसे आप बिना सोचे समझे जान लें कि यही महाशय पोंगा पंडित हैं। जो साहब अपने को धर्म का ठेकेदार समझते हों तथा शेष सभी को विधर्मी की संज्ञा देते हों—वही पक्के पोंगा पण्डित हैं। जो स्वयंपाकी की डींग मारता हो, जो अपने सगे–सम्बन्धियों का छुआ तक न खाता हो; परन्तु लुक–छिप कर हर स्थान पर जो भक्ष्याभक्ष्य सभी कुछ उदरस्थ कर जाता हो और डकार भी न लेता हो — वही तो पोंगा–पण्डित है।

जो धर्म के नाम पर अपनी जेबें भरता हो, समय समय पर गिरगिट की तरह रंग बदलता हो जो अपने 'यजमान' को

अन्नदाता, श्रीमान्, हुजूर, गरीब परवर "इत्यादि विशेषणों से सम्बोधित करता हो, जो परोपकारियों को, देश भक्तों को तथा सुधारकों को पानी पी-पी कर कोसता हो—वही पोंगा पण्डित है।

जो बात-बात में अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा करता हो तथा स्वतंत्रता प्राप्ति को भगवान का अभिशाप समझता हो-वही जो है सो—पोंगा पण्डित है! जो घर की लक्ष्मी-तुल्य देवियों को पैर की जूती समझता हो तथा वेश्याओं को "मंगला मुखी" कहकर उनपर बलि-बलि जाता हो, समस्त 'राम-चरित-मानस' में जो "ढोल-गँवार शूद्र पशुनारी। ये सब ताडन के अधिकारी" का ही अर्थ या अनर्थ समझ सका हो—उसे ही आप पोंगा पण्डित समझें।

जो श्रम से दूर भागता हो, हराम का खाने में जिसके दाँत बुरी तरह बिध गये हों, जो राम-नामी तो ओढ़े हुये हो, परन्तु दूसरों की बहू-बेटियों पर बुरी तरह से दृष्टि जमाये रहता हो—वही क्या नाम कर के—पोंगा पण्डित है।

कहिये सम्पादक जी! अब तो आप जान गये अपने पोंगा पण्डित को! यदि अब भी कुछ कसर रह गई हो तो होली की प्रतीक्षा कीजिये। होली के दिन आपका नग्न नृत्य विशेष रूप से होता है। विजया के नशे में पूर्ण दानव की भाँति आप की रक्त-वर्ण आंखें देखकर वल्लाह आपकी बाछें न खिल जायं या उलटे पाव ही आप न भाग खड़े हों जायं तो मस्तराम जी की उंगली कटवा लीजियेगा। किसी की मां बहन देख कर 'अरर कबीर का तुमुल निनाद आसमान को न हिला दे तो मस्तराम जी का जिम्मा

पोंगा पंडित का कहना है कि जो होली के दिन भी नशे का सेवन न करे, मोरियों के कीचड़ में छपाछप गोते न लगाये या इस

दिन भी कोई मनुष्य यदि पशु न बन जाये तो वह हिन्दू कहलाने का अधिकारी नहीं। उसे वे देश द्रोही, जाति द्रोही, धर्म द्रोही, कुल द्रोही इत्यादि जाने क्या क्या कहते हैं।

सम्पादक जी ! एक बात और है। आप की आज्ञानुसर मस्तराम जी ने पोंगा पंडित की जो इस प्रकार खुले आम प्रशंसा की है, उस से मस्तराम जी की कुशल नहीं। सत्य मानिये मारे भय के मस्तराम जी को आज इक्यावन दिन से नीद नही आती।

और कुछ सुना आपने ? हमारे पोंगा पंडित कांग्रेस मंत्रिमंडल से अप्रसन्न रहते है पाते तो उनका मुंह ही नोचलें। भला जो जमी दारी तोड़ने जा रहा हो, किसानों तथा मजदूरो के दुःख दूर करने का प्रयत्न कर रहा हो, भगवान सभी के हैं अतः अछूतों के भी है —— इस प्रकार की ऊट पटांग (!) बातें जो बकता हो, सबको समानाधिकार दिलाने का प्रयत्न करता हो— वह भी शासन करने के योग्य है। हमारे पोंगा पंडित तो ऐसे लोगों को 'पामर' पतित तथा जाने किन-किन नामों से स्मरण किया करते हैं।

शेष मय कूंड़ी सोंटा के सब चकाचक है। पोंगा पडिण्त आप से मिलने वाले हैं। कहिये तो होली में आ धमकें। हां अपनी आँख नाक बचाये रहियेगा। होली खेलने में पोंगा पण्डित बुरी तरह से हाथा पाई करते हैं। बूटी तथा लड्डुओं की भी व्यवस्था आप ही को करनी होगी, यह भी कृपया ध्यान रखियेगा।

ओ३म शान्तिः शान्तिः शान्ति

आपका वही——

स्वार्थ-सिद्ध

पाखंड पुरी,

४ मार्च १९५१ ई०. कपट नगर।

दूसरा चिट्ठा

अजी सम्पादक जी महाराज !

प्रणाम वाले कुम ।

चौंकिये नहीं बन्दा परवर ! यह शब्द 'राम-रहीम-मिलन का प्रत्यक्ष सूचक है। बहुत दिनों तक दाढ़ियाँ चोटियां आपसमें भिड़ती रहीं, परन्तु अब मस्तराम जी उनका गठबन्धन करा के ही दम लेंगे। फिर आज तो होली का शुभ पर्व ठहरा—नव वर्ष का नया दिन। अतः बिछुड़े हुओं से खुल कर गले मिलना ही चाहिये भले ही पोंगा पांडे के लिये यह दिन मनहूस सिद्ध हुआ हो, परन्तु मस्तराम जी तो मारे प्रसन्नता के फूलकर कुप्पा हुए जा रहे हैं।

बात यह है कि पोंगा पांडे को कांग्रेसी-शासन से एक बात की शिकायत है। और उनकी यह शिकायत चौंसठो पैसे सही भी है। भला बतलाइये तो यही प्रजातंत्र राज्य है जिसमें भंग-भगवती के दर्शन तक मिलना दुर्लभ हों ? वह भंग, जिसका दावा है—

विजया है विजय–
प्रदायिनी विदित इसे
शक्तियों में ईश की
प्रमुख मानता हूँ मैं ।

या

वह कंचन-घट में रंग भरी,
लहराती त्रिविध तरंग भरी,
विजया है अमित उमंग भरी,

अथवा

"चल छत के ऊपर छान सखे !

यह रद्दी सी है साफी क्या
फाड़ें रेशम के थान सखे !
चल छत के ऊपर छान सखे !" इत्यादि

पोंगा पांड़े तो हाथ मारकर कहते हैं कि काँग्रेस सरकार की 'नशा-बन्दी' योजना कभी चल ही नहीं सकती। सम्पादक जी ! आप उनकी-रुवासी शक्ल यदि कहीं कल देख पाते तो आप का हृदय बिन पिघले नहीं रह सकता था। बेचारे बच्चों की तरह रो-रो कर चिल्ला रहे थे—"हाय रे ! बिना भंग के तो कुत्तों से भी बुरी मौत से मरना होगा। भला हो पन्त जी का जिनके राज्य में आज प्रजा बिना भंग के मर रही है हाय रे ! आज यह होली का दिन और भंग-भगवती के दर्शन भी नहीं। जरा सी भी भंग अपने पास निकल आये, तो हमें गिरिफ्तार किया जाता है; हमारे ऊपर मुकदमे चलाये जाते हैं; हमें जेल भेज दिया जाता है। यह भी कोई न्याय है ! यही राम राज्य है !! हमने ही उन्हें गद्दी पर बिठलाया था। और वे ही आज हमारे गलों पर छूरियाँ चला रहे हैं। हाय ! जरा सी भी भंग नहीं पीने देते ! धिक्कार है ऐसी स्वार्थपरता को ! इस प्रकार कहते-कहते पोंगा पांड़े ने हिम-विनिन्दित एक ऐसी ठंढी श्वास ली कि मस्तराम जी भी मारे ठंढ के कांपने लगे।

पोंगा पांडे का यह रोना अभी समाप्त ही न हो पाया था कि मुन्शी स्वार्थ नारायण ने आंखों पर से चश्मा हटाकर आँसू पोंछना शुरू किया। रुंधे हुये कंठ से बोले—'अब भाई न्याय कहां ! कलयुग है कलयुग ! नेकी का बदला बदी होता ही है ! जो मदिरा भगवती का प्रसाद है, आज उसी मदिरा-पान को बहुत बुरा बतलाया जा रहा है। आज होली के दिन कितनी ही रंगीन बोतलें आदि-शक्ति-भगवती के चरणों पर चढ़ा दी जाती थीं—हम भक्त-गण भी

प्रसाद रूप में उसमें से कुछ ग्रहण कर लेते थे। इसमें भी क्या कुछ किसी की गांठ से खर्च हो जाता था। कांग्रेस-सरकार के जितने भी कारनामे हैं, सब ऐसे ही ऊट-पटांग तथा देश द्रोही! कहीं छुवा-छूत का मिटाना, कहीं बाल-विवाह का रोकना, कहीं नशा-बन्दी करना, कहीं कुछ, कहीं कुछ। और बाबा, सब कुछ करते हम सब में आप का साथ देते- आप की प्रजा ही हैं; परन्तु महराज! जरा सी पी तो लेने देते। शराब-बन्दी करके जाने आपने कौनसा पुण्य लूट लिया है। यह तो न हुवा कि देश स्वतंत्र हुवा है, खुले आम ग़रीबों को दो-दो चार-चार बोतलें खुशी से मुफ्त ही बटवा देते उलटे यह कि अपना पैसा भी दे कर न पियें। यह एक ही रही! जमाने की खूबी तो देखिये भगवती के प्रसाद की यह अवहेलना! यदि वास्तव में हम गरीबों की आह में कुछ असर है, भगवती के हम भक्तों में यदि कुछ भी शक्ति है-तो-तो-तो-संसार में प्रलय न उपस्थित हो जाय, आदमी को आदमी ही न खाने लगे तो कहियेगा। वही मदिरा जिसके लिये कहा गया है।

'कल-कल' शब्द कर
जब भरता हूँ मधु,
अनहद-नाद अनुभव
करता हूँ मैं।
प्याले की समुज्ज्वलता
भूलती भुलायें नहीं,
मान ज्योति ईश की
हिये में धरता हूँ मैं।
तन-मन-धन एक
साकी ही को समझता हूँ,

वह पूज्य देव है,
उसी को डरता हूं मैं।
मन्दिर है मेरा एक
प्यारा-मधुशाला बस,
जीता मदिरा पै हूं
उसी पै मरता हूं मैं (१)
प्याला अधरों से लगते
ही पल मात्र ही में
सुख भव- मोक्ष का
अचल मिल जाता है।
घूंट जब आता जीभ
पै है मत पूछो कुछ,
स्रोत ही सुधा का
अविरल मिल जाता है।
कंठ से उतारते ही
हाल क्या बताऊं तुम्हें,
जीवन का पूरा बस
फल मिल जाता है।
आते ही उदर में,
मुझे तो सत्य मानो तुम,
परम-पवित्र गंगा—
जल मिल जाता है।

ऐसी देव तुल्य वारुणी का यह निरादर! हायरे! इसी का नाम स्वतंत्रता है! इसी के लिये देश ने प्राणों की बाजी लगा दी थी। थोड़ी सी मदिरा पान करके स्वर्ग का सुख प्राप्त कर लेते थे, तो इसमें पन्त जी को जाने क्यों हसद होने लगा!

अरे भाई, जलन आप बेकार ही करते हैं। आप अफीम गाँजा, चर्स, भांग, मदिरा, चंडू इत्यादि सभी के एक साथ ही भक्त बन जाइये हम कुछ कहें तो आप हमारी जीभ कटवा लें।

सत्य मानिये सम्पादक जी! मुन्शी स्वार्थ नारायण जी ऐसा करुण क्रन्दन कर रहे थे, ऐसा विलाप कर रहे थे, कि कठोर से कठोर हृदय मनुष्य भी दस तोले आंसू बहाये बिना नहीं रह सकता था। अजी मनुष्य की कौन कहे पशु-पक्षी तक मुन्शी जी के दुख मे दुखी थे। मुन्शी जी की कारुणिक-दशा देख कर यही कहना पड़ता है।

'अबस है जिक्र इन्सां का
दरो दीवार रोते हैं।'

बेचारे मुंशी जी का मुंह सूखा जा रहा था, फिर भी बोलते ही चले जारहे रहे थे कभी काँग्रेस शासन की आलोचना करते, कभी दोनों हाथों से अपना माथा ठोंकते। कभी कांग्रेसियों को कोसते तो कभी धर्म की दुहाई देते। एक बार तो इस प्रकार दांत पीसने लगे कि मानों आज सारी दुनियां ही को चबा डालेंगे। मस्तराम जी से न रहा गया। ज्यों ही वे उन्हें सान्त्वना देने तथा अपने रूमाल से उनके आंसू पोछने के लिये आगे बढ़े, त्यों ही एक ओर से आवाज आई—"हाय अफीम! हाय अफीम!!" उधर देखा तो अफीमी मियां का बुरा हाल! उनके शरीर पर वैसे ही सिवा चमड़ी के हड्डियों का नाम तक नहीं था, और आज तो ऐसा मालूम होता था कि मानों अभी कब्र से बाहर निकल कर आये हैं। जली कौंड़ियों सी आंखे कम से कम बालिश्त भर अन्दर घुस गई थीं। कराहते हुये बोले— "या अल्लाह मियां! इस जिन्दगी से मौत ही अच्छी है। तड़प-तड़प कर मरने से तो यही अच्छा है कि एक दम कयामत

बरपा होजाय ! नहीं मालूम हुकूमत को अफीम से ऐसी चिढ़ क्यों है। अजी अफीम में भी कोई खराबी है ? पाक परवरदिगार की बनाई हुई इस न्यामत से भी परहेज !!! लाहौलविलाकूवत !!! या खुदा रहम कर अपने इन ना समझ बन्दों पर, अफ़ीम की भी बदगोई कर रहे हैं अजी ऐसी चीजों को तो बाहिश्त में भी मिलना नामुमकिन है। लेकिन जिसकी किस्मत में इसका लुत्फ़ लेना लिखा है वे ही तो ले सकते हैं सब को यह 'अमरित' कहाँ मयस्सर हिन्दी में एक कहावत है–

करम लिखी महुवा की रोटी
कौन खवावै खीर ।

जिसकी तकदीर में अफीम का मजा लिखा ही नहीं है, वह बेचारा क्या करे ? धर्म-कर्म भी अफीम के आगे हेच है साहब ! किसी ने क्या खूब कहा है–

पूजा–पाठ धर्म–कर्म
जानता नहीं हूँ कुछ,
मेरे लिये एक यही
राम है, रहीम है।
देती मुझ को है नव–
चेतना का दिव्य-रस,
औषधि यही है,यही–
वैद्य है, हकीम है।
वैभव का लोभ है–
न मोह है सुयश ही का,
रहती अंगूठे पर
सम्पदा असीम है

स्वर्ग या नरक की
न चिन्ता करता हूं कभी,
मेरा जीव-धन-प्राण-
यह ही अफीम है ॥ १ ॥
भंग भरती है 'आह'
देख के अनन्त गुण
'चाह' की रही न चाह,
बात है न बस की।
लस्सी, कहवा में या
सुधा में वह स्वाद कहाँ,
मदिरा बिचारी है-
पिटारी अपजस की।
बोलेगी चिलम किस
मुँह से बताओ जब,
लगती सभी के मुंह
जड़ अनरस की।
अकथ अफीम की
कहानी, लन्तरानी नहीं,
पानी भरती है यहाँ
नानी सोमरस की ॥ २ ॥
काली-काली चिकनी
चमकदार नीलमपरी
शालिग्राम की सी
यह पूजनीया गोली है।
"ऐटम-बमों" से बढ़
काम करती है यह

चेली धनवन्तर की,
अमृत में घोली है।
रखती बुढ़ापा दूर,
लाती है जवानी फिर,
काया कल्प करती,
रसायन की झोली है।
धन्य है अफीम, कौन-
पर्व का है काम जब,
नित्य यहाँ रहती
दिवाली और होली है ॥ ३ ॥

मस्तराम जी ने भी जब हाँ में हाँ मिलाते हुये कह दिया-

सकल पदारथ हैं जग माही।
भाग्य हीन नर पावत नाहीं।

तो अफीमी मियाँ इतना खुश हुए कि उछल पड़े तथा मस्तराम जी को इतनी दुवायें देने लगे कि कुछ पूछिये मत! कहने लगे हां भाई, यह तो है ही :—

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न देखा कोय
जो दिल खोजा आपना मुझ से बुरा न कोय।

आप अफीम की क्या बुराई करेंगे? पहले अपना दिल तो टटोलिये हजरत! अफीम का सांवला रंग हमें किशन' महराज की याद दिलाता है! हिन्दू होकर भी पन्त साहब इस बात को न समझ सकें! अफसोस! सद् अफसोस!! सुनते हैं राम भी सांवले ही थे अजी जब हुकूमत अपने इन पैगम्बरों का भी खयाल नहीं करती, तो हमारा क्या वह खाक खयाल करेगी।

खैर हम तो आज अफीम के बिना मर ही रहे हैं लेकिन याद रखना:-

नाव काग़ज की कभी चलती नहीं।
जुल्म की टहनी कभी फलती नहीं।

यह अफीम ही दुनियाँ को नेस्तनाबूद न कर दे तो मेरा नाम अफीमी मियां नहीं। हुकूमत ने अपने को समझ क्या रखा है, जो इस तरह से हमारे पैदायशी हकूक छीन रही है। अफीम खाना हमारा आज का नहीं पुश्तैनी हक है। अपने इस हक को हम कभी भी छोड़ नहीं सकते। इसके लिये हम मर मिटेंगे, कुर्बान हो जायँगे, शहीद हो जायंगे; लेकिन अफीम खाने के अपने हक को हर्गिज-हर्गिज नहीं छोड़ सकते हम दुनियां को दिखा देंगे कि एक अफीमी में कितनी ताकत होती है! अफीम जैसी खुदाद न्यामत की रियाया से जबर्दस्ती छीन लेने का मजा अगर हुकूमत को न चखा दिया तो हम अफीमी काहे के!!

सुना है दुनियाँ के सब मुल्कों ने मिलकर कोई ऐसी जमात कायम की है जो, दुनियां के निहायत अहम मामलों को तै करती है। हम अपना मामला वहां भी भेजेंगे। अमेरिका, रूस, इंग्लैंड वगैरा सभी मुल्कों से इस मामले में हम लिखा पढ़ी करेंगे। इतना ही नहीं, मौका आने पर हम खुद ही इन मुल्कों का दौरा करेंगे हम इसका फैसला कराकर ही दम लेंगे। देखें दुनियां हमारा साथ नहीं देगी! देखें दुनियां हम से अफीम छीन लेगी।

कहते-कहते अफीमी मियाँ को कुछ गस आने लगा। आश्चर्य नहीं था। कि वह अपनी जीवन लीला समाप्त भी कर देते परन्तु मालूम होता है कि शायद आप की जिन्दगी भी बड़ी बेहया है, जो बड़ी देर तक अंटागाफील पड़े रहने के बाद भी फिर चीखने लगे।

अफीमी मियां की यह चीख कुछ काम भी कर गई। एक से

एक धक्काड़ियल नशेबाज वहां इकट्ठा होने लगे। एन्जिन की तरह फकाफक धुवां उड़ाने लगे। हर हर महादेव' कह कर एक ओर चिलमें चलने लगीं तो दूसरी ओर चंडूल खाँ चंडू में चिपटा गये फिर भी सभी के मुख पर एक उदासी छाई थी। हां 'तम्बाकुवों' को कोई विशेष रंज नहीं मालूम होता था। उनकी हथेलियों पर अंगूठा उसी शान से चल रहा था। साथ ही बीच बीच में 'फट फट' की मधुर ध्वनि भी सुनाई पड़ जाती थी। कोई 'पिच पिच' करता तो कोई चुटकी से भरकर दांतों और होठों के बीच में "सुरती" को इस शान से रखता जैसे कोई अनायास ही अमृत पा गया हो और धीरे धीरे उसका रस ले रहा हो इतने में किसी ने कह दिया- सम्भव है आगामी वर्ष तक तम्बाकू पर भी सरकार की गृद्ध दृष्टि पड़ जाय। इससे लोगों के मुख पर विषाद की एक क्षीण रेखा तो स्पष्ट ही दृष्टि गोचर होने लगी परन्तु उस समय वे उस कटु घूंट को पीकर ही रह गये।

सम्पादक जी! नशेबाजों के कुछ प्रतिनिधि आप से भी मिलने वाले हैं। अतः मस्तराम जी भी आप से यही सिफारश करते हैं कि एक राष्ट्रीय पत्र सम्पादक होने के नते-आप भी उनके इस आन्दोलन में उनको पूर्ण सहायता दें तभी वह जोर मारें कि जिससे सारा देश अफीमी हो जाय कहें तो थोड़ा सा चंडू रिश्वत के तौर पर पहले ही से भेज दिया जाय।

शेष सब चकाचक है।
आप का वही
कन्हैया अली,
धोती-लुंगी गली,
दाढ़ी-चोटी जंकशन।

२३ मार्च सन् १९५१

तीसरा चिट्ठा

भैया सम्पादक जी !

जय चेला चापर की ।

जी हां ! कोई कोई चेला ऐसा ही चापर चरण होता है। विश्वास न हो तो एक चेला बनाकर आप भी इसका आनन्द लूट लें। बीसवीं सदी का चेला यदि "चैला" बन कर न पेश आये तो मस्तराम जी का जिम्मा ।

क्या कहा ? 'कलयुगी-चेला पुराण' सुनने की आप की उत्कट अभिलाषा है, तो लीजिये हाथ में अक्षत सुपारी और बैठ जाइये पलथी मारकर। वल्लाह ! चेला महात्म्य सुन कर मारे प्रसन्नता के उछल न पड़े तो मस्तराम जी पर कुछ 'फाइन' कर दीजियेगा ।

हां तो कलयुगी चेला वह है जो अपने पर निरन्तर ही कीचड़ उछालने का प्रयत्न करता हो; भले ही वह सारे का सारा मैल उलटे ही उसी के मुंह पर छपाक से क्यों न पड़ता हो । अजी चेला ही काहे का जो बात बात में गुरू की खिल्लियां न उड़ाता हो। पूर्ण कलियुगी चेला तो वह है जो बचपन में तो निरा बुद्धू ही हो जिसने विद्यार्थी जीवन में गुरू की इतनी चपतें खाई हों कि खोपड़ी पिल-पिली हो गई हो इतनी बार मुर्गा बनाया गया हो कि टांगें उखड़ू होकर ही रह गई हों, परन्तु बड़ा होने पर गुरू का सामना करने के लिए बुरी तरह से बौखला रहा हो वही कलियुगी चेला है।

वास्तव में आजकल वही चेला चेला है जो पग पग पर गुरू

को नीचा दिखाने का प्रयत्न करता हो परन्तु अन्त में स्वयं ही चारों खाने चित हो जाता हो।

"चन के आया था शिकारी
बन गया खुद ही शिकार।"

धन्य है कलियुगी-सर्दा का वह चेला जो गुरू हत्या करने में भी न हिचकता हो परन्तु दूसरों के कन्धों पर बन्दूक रखकर जो किसी उच्च परीक्षा में बैठते ही आपे से बाहर हो जाय, वही तो-क्या नाम करके— कलियुगी चेला है। जो बात २ में यह कहता हो "अजी गुरू पढ़े ही कितना हैं" तथा गुरू-उपहास करने में खीसें निकाल कर जो बेहयाई का पूर्ण- परिचय देता हो, उसे ही आप कलियुगी चेला समझें।

भैया ! कलियुगी का सच्चा चेला वही है जो ताल ठोककर गुरू से शास्त्रार्थ करने पर उद्यत हो जाता हो हारकर खिसयाने बंदर की तरह खौंखियाने लगता हो। जो भस्मासुर बन कर गुरू को भस्म कर देने के लिये पीछे पड़ गया हो, परन्तु अन्त में जिसे स्वयं ही भस्म होना पड़े वही पूरा चेला-नहीं राम राम चेला है।

धन्य है वह चेला जो महा मूर्ख होकर भी अपने को दिग्गज पंडित समझता हो। जो चेला पंडित समुदाय में अपनी मूर्खता पर हँसा जाता हो परन्तु फिर भी गुरू की शरण में न जाने में ही अपनी शान समझता हो, जो सम्पूर्ण रामायण बांच जाने पर भी यह न समझ सका हो कि रावण मारा गया था या राम इतनेपर भी जो गुरू की हँसी उड़ाता हो-वही जो है सो-पूरा कलियुगी चेला है। दो चार बढ़िया के शब्दों के बल पर जो चेला गुरू के

खूँटे से छूट कर चौखड़ी भरने का असफल प्रयत्न करता हो, उसका ही नाम कलियुगी चेला है।

गुरू के सामने जो ऐंठ-ऐंठ कर चलता हो, जिसके आगे बाबा तुलसीदास की उक्ति–

'डगमगानि महि दिग्गज डोले।' भी फीकी पड़ जाती हो – वही चेला तो पूर्ण कलियुगी चेला होने का अधिकारी है। जो गुरू की रचनाओं में जबर्दस्ती एवं निर्थक अशुद्धियां निकालने का विफल प्रयास करता हो उसे ही कलियुगी चेला को उपाधि से अलंकृत करने का विधान कलियुगी सदी के शास्त्रों में है।

जो गुरू से छल कपट न करता हो अथवा जो गुरू को 'अर्द्ध सभ्य कहकर सम्बोधित न करता हो—वह भी चेला कोई चेला है। मस्तराम जी तो पूर्ण चेला उसे कहते हैं जो गुरू से अधिक परीक्षायें पास करते ही ऊंट की तरह बलबलाने की कला में चतुर हो जाता हो।

दर्शनीय है वह चेला जो कतिपय दाढ़ी मूँछ सफाचट पिट्ठुओं के उकसाने पर गुरू के सामने भी व्यास आसन पर बैठने की धृष्टता करता हो अथवा जो सदैव ही इस बात का इच्छुक रहता हो कि गुरू ही उसे पहले प्रणाम करें – वही जो है सो घोर कलयुगी चेला है। जो 'बिना गुरु ज्ञान मिलै कहौ कैसे – की पूर्ण उपेक्षा करता हो तथा सारी जिन्दगी भर पढ़ता पढ़ता जो अन्धा तक हो गया हो, परन्तु फिर भी गुरू द्रोही होने के कारण जिसको कौड़ी भर कुछ भी न आता जाता हो —वही कलियुगी चेला है।

जो उच्च शिक्षित हो जाने पर भी नम्रता का नाम न जानता हो, अहंकार वश जिसकी आंखों पर ऐसा पर्दा पड़ गया हो कि जो गुरू को पहचान न सकता हो वही कलियुग का चतुर चेला है।

'क्या कहिये गुरुता उनकी,
जिनके गुरु के गुरु चेले हुये।'

जो अभागा ऐसे गुरु से भी दूर रहता हो तथा उलटे गुरु को ही 'चेला मंत्र' देता हो, वही कलियुग का विराट चेला है। जिसे गुरु अमृत वचन विष-तुल्य प्रतीत होते हों जो सूर्य को त्याग कर जुगनू तथा दीपक पर ही लट्टू हो रहा हो तथा जो चेला हो कर भी गुरु का सा अभिनय करता हो—वही तो भैया! कलियुगी चेला है।

जो गुरु की उपदेश देता हो, जो गुरु पर झूठा अभियोग लगा कर उसे 'बड़े घर' की हवा खिलाने तक की सोच सकता हो तथा जो गुरु-दक्षिणा के स्थान पर 'चेला-दक्षिणा' को अधिक महत्व देता हो उसकी ही मनुष्य कलियुगी चेला कह कर स्तुति करते हैं।

होगा कोई मूर्ख एकलव्य, जिसने गुरु के कहने पर दाहिने अंगूठा को काट कर गुरु के चरणों पर रख दिया था। होंगे कोई ना समझ कृष्ण जो गुरु के लिये जंगलों में लकड़ियां बीना करते थे। होंगे अक्ल के दुश्मन राम-लक्ष्मण जो गुरु के पैर दाबते फिरते थे। अजी होगा कोई जंगली शिवाजी जो गुरु के लिये सिंहनी का दूध लाने के लिये वर्षा रितु की तिमिराच्छादित अर्द्ध रात्रि में जंगल में प्राण देने के लिये घुस गया था। भैया, कलियुगी चेला तो वह है जो गुरु के नाम से ही भड़क उठता हो। जो गुरु की टोंपी उतारने की ही चेष्टा किया करता हो, जो अवसर पड़ जाने पर कभी-कभी गुरु से ही पैर दबवाने में भी न हिचकता हो, जो गुरु की चुटैया के बाल तक सप से उड़ा लेता हो, जो

चरणामृत लेने के साथ ही गुरु के पैर का अंगूठा ही उड़ा ले जाता हो-वही मस्तराम जी की दृष्टि में पूर्ण चेला है।

मूर्खता का मोटा चश्मा जिसकी आँखों पर ऐसा चढ़ा रहता हो, जिसके द्वारा उसे श्रेष्ठतम गुरु भी कपटी एवं द्वेषी दिखलाई देता हो उसे ही कलियुगी चेला कहते हैं। पर्याप्त शिक्षित होने पर भी भले ही उसे निम्न श्रेणी का कार्य करके जीविको-पार्जन करना पड़ता हो, खेल कूद दिखा कर ही निभाना पड़ता हो। 'पढ़े फारसी बेचैं बेर'-फिर भी गुरु द्रोह करने में जो न हिचकिचाता हो, उसे ही मस्तराम जी घोर कलियुगी चेला का प्रमाण-पत्र देकर कृतार्थ करते हैं।

सब चेलों में अलबेला हूं।
मत समझो मुझे अकेला हूँ॥
मैं खेल अनेको खेला हूँ।
मैं घोर कलयुगी चेला हूँ॥

इति श्री कलियुगी चेला पुराणे चेला माहात्म्य नाम प्रथम अध्याय

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

आपका वही
सूक्ष्मदर्शी
गुरु चेला गली,
शहर गुरुघाट।

२१ अप्रैल सन् १९५१ ई०

॥ चौथा चिट्ठा ॥

अजी सम्पादक जी महाराज !

जय गड़बड़ घुटालाचार्य की ।

वैद्य-प्रवर श्री गड़बड़घुटालाचार्य जी का नाम श्रीमान् ने सुना होगा । आपने इधर असंख्य अभूतपूर्व औषधियों का आविष्कार किया है । यदि उन औषधियों का केवल नाम ही लिखने का इरादा करें तो नितान्त असम्भव है । पोथे के पोथे रँग डालिये, गाड़ियों रोशनाई खर्च कर दीजिये, बांस की ही कलम क्यों न हो, परन्तु घिसते घिसते अन्त में "कुकड़ूकूं" ही कर देगी । मजाल क्या कि उन औषधियों का छोर मिल सके ।

हाँ तो जनता के लाभार्थ इन अमूल्य औषधियों का यदि श्रीमान् अपने पत्र में विज्ञापन छाप सकें तो मस्तराम जी श्रीमान् का एहसान आजीवन नहीं भूलेंगे ।

१ प्राणघातक - चूर्ण यथा नाम तथा गुण । यदि इस चूर्ण की एक ही फंकी अपना प्रभाव-शाली गुण न दिखलाये तो दूने दाम वापस । यह वह चूर्ण है जिसकी एक चुटकी रोगी को सदैव के लिये शान्ति प्रदान करती है । यह वह औषधि है, जिसने इसके अविष्कारक का झंडा संसार में खड़ा कर दिया है । इस दवा की एक ही खुराक तहलका मचा देने के लिये काफी है । विशेषता यह कि औषधि खाने के साथ ही खान-पान-परहेज इत्यादि का झगड़ा सदा के लिये छूट जाता है ।

दाम लागत मात्र पांच रुपये रत्ती ।

२–शरीरान्तक गोलियां–'शरीरम् व्याधि मन्दिरम्' अतः जो लोग सब प्रकार की व्याधियों से छुटकारा पाना चाहते हैं, उनके लिये यह औषधि राम-बाण से भी बढ़ कर है। बन्दूक की गोली चाहे चूक भी जाय परन्तु ये गोलियाँ तत्काल ही अपना प्रभाव दिखलाये बिना नहीं रह सकतीं। इन गोलियों की प्रशंसा में कुछ कहना मानों सूर्य को दीपक ही दिखालाना है। रोगों की जड़ यदि इन गोलियों से समूल ही नष्ट न हो जाय तो हमारा जिम्मा। कृपया एक बार परीक्षा अवश्य करें। खाते ही काम पूरा करने वाली इन गोलियों का मूल्य केवल नाम मात्र अर्थात् एक शीशी का मूल्य सौ रुपया। दाम पेशगी लिये जाते हैं।

३–चिरनिद्रा प्रदायनी चटनी–यह वह चटनी है जिसकी आज संसार को नितान्त आवश्यकता है। जो लोग निद्रा से पीड़ित हैं, रातें जिनके काटे नहीं कटतीं, जो बेचारे रात भर करवटें बदलते हैं– फिर भी आंखों में नींद का पता नहीं उनके लिये यह चटनी अमृत से भी बढ़ कर गुणकारी सिद्ध हुई है। सोने के पहले एक उंगली चटनी चाट लीजिये, फिर क्या मजाल कि आप सोते ही न रह जांय। वह दवा ही क्या जो सदा के लिये रोग दूर न करदे। चटनी के चाटते ही फिर आप के सर पर चाहे हजारों नक्कारे ही न बजते रहें, परन्तु क्या मजाल कि आप करवट तक बदलें। जिन लोगों को पुष्प की शैया पर भी नींद नहीं आती थी, वे इस दवा के प्रभाव से खुली पृथ्वी पर चित सोते पाये गये हैं, इससे बढ़ कर आप और क्या प्रमाण चाहते हैं। एक बार परीक्षा अवश्य करें। दाम केवल पौने आठ रुपये रत्ती। एक ही रत्ती आप के लिये काफी होगी।

४–ताप हरण रस—रस तो आपने अवश्य देखे होंगे, परन्तु यह रस संसार में बेजोड़ है। जो लोग ज्वर से पीड़ित हैं तथा सब प्रकार की औषधियां करके निराश हो चुके हैं, उनके लिये हमारा यह रस वरदान-स्वरूप है। 'थर्मामीटर' लगाते लगाते जो लोग ऊब चुके हैं, संसार जिनके लिये अभिशाप हो रहा है, उन्हें इस औषधि का अवश्य ही सेवन करना चाहिये। इस रस की एक बूंद कंठ के नीचे उतरी नहीं कि ज्वर एक दम से गायब। ईश्वर झूठ न बुलाये तो आप के शरीर में गर्मी का जरा भी नाग नहीं रह जायगा। बल्कि आप का शरीर बर्फ़ के समान ठंडा पड़ कर-ज्वर ही क्या—सब रोगों से मुक्ति पा जायगा। विश्वास न हो तो प्रतिज्ञा-पत्र लिखवा लें।

मूल्य तेरह रुपये तीन आने आठ पाई प्रति बूंद।

५–उदर शूल-नाशक-जड़।—प्रिय पाठक गण! मैं औरों की भांति प्रशंसा नहीं करना चाहता। महात्मा-प्रदत्त इस जड़ी की एक ही खूराक से यदि आपके पेट के समस्त रोग एक दम ही से नष्ट न हो जाँय तो आप हमारी नाक शौक से कटवा सकते हैं। इससे बढ़ कर और क्या 'गारंटी' हो सकती है। पेट का रोग बड़ा भयंकर होता है। पेट इतना बदमाश है कि पूछिये मत। सारा झगड़ा इसीलिये तो है। यही समझ कर मैंने इस अभूतपूर्व औषधि का निर्माण किया है। न रहे बांस न बजे बांसुरी। इस जड़ी के खाते ही अन्तिम दस्त के साथ ही पेट के सभी प्रकार के शूल अपने आप ही सदा के लिये शान्त हो जायेंगे। जल्दी कीजिये। औषधि थोड़ी ही रह गई है। मूल्य पौने तेरह अधन्नों की सवा रत्ती।

"मरणोन्मुख-रसायनशाला, गड़बड़पुर" की ये समस्त औषधियां पौने मूल्य पर मिलती हैं। नक्कालों से सावधान रहें।

खरीदते समय 'शनिश्चर देव की मूर्ति की छाप अवश्य देखलें, नहीं तो धोखा खायेंगे।

सम्पादक जी ! इन औषधियों के अतिरिक्त श्री गड़बड़घुटाला-चार्य महाराज का 'अलक्षण'—नहीं नहीं राम राम एलेक्शन के रोगियों के लिये एक नुस्खा भी प्रकाशनार्थ आया है। अतः उसे भी कृपया यदि आप प्रकाशित कर दें तो बड़ा उपकार होगा।

'अक्खड़पन' की जड़ दो रत्ती, 'चापलूसी' के छिलके तीन माशे, 'झूठ' के दल चार तोले, विश्वासघात' की छाल पाँच माशे, 'वाचालता' की बेलि पाँच रत्ती, 'उछल-कूद' का चिरायता छे तोले तथा 'कपट के डंठल तीन तोले लेकर 'स्वार्थता' के खरिल में कोई 'लाल टोपी वाला' दो घंटे तक दुम हिला हिला कर रगड़े। जब रंग गाढ़ा हो जाय तो 'हां हुजूरी' के शहद के साथ घंटे-घंटे पर चाटे। साथ ही "हे मतदाता ! त्वमेवसर्वम्" मंत्र का उच्चारण करता हुवा निर्वाचनान्तरावधि' तक हरताल' देवता का बार बार आवाहन करता रहे, तो निस्सन्देह उसका यह रोग दूर हो सकता है।

शेष सब चकाचक है। अन्य 'अलक्षण' रोगियों की भी औषधियां तैयार हो रही हैं। प्रतीक्षा करें।

आपका वही—
धांधली प्रसाद,
धांधूगली,
अलक्षण नगर।

१० नवम्बर सन् १९५१

पांचवां चिट्ठा

हे सम्पादक जी महाराज !

जय बौड़मानन्द की।

आप चाहे जितना जोर डालें, दबाव डालें परन्तु मस्तराम जी कांग्रेस को अपना वोट' हर्गिज-हर्गिज नहीं दे सकते। अजी यह वही तो काँग्रेस है जिसने 'पंचायत-राज्य' स्थापित करके वह गुरुतम अपराध किया है, जो एकदम अक्षम्य है। भला गाँव वाले जब अपने सभी झगड़े आपस ही में तय कर लेंगे तो क्या मस्तराम जी घास चरा करेंगे ! भोले गँवारों को आपस में लड़ा कर जो गुलछर्रे मस्तराम जी उड़ाते थे, जब वह ही अब न नसीब होगा तो क्या ऐसी हुकूमत को ले कर मस्तराम जी भाड़ में झोकेंगे ! वकील, मुन्शी, मुखिया, सिपाही के अतिरिक्त जिलेदार, तहसीलदार, थानेदार तथा जमींदार इत्यादि सभी दारों की तो रोजी इस 'भरी' काँग्रेस ने छीन ली है, फिर भी आप उसी के लिये मस्तराम जी से 'वोट' मांग रहे हैं। 'लाहौलविलाक़ूवत'।

हां तो वन्दा अब कांग्रेस को 'वोट' नहीं दे सकता, चाहे कोई सर पटक कर ही क्यों न मर जाय। हाय रे ! एक दिन वह था जब जमींदार गांव में पहुँच जाता था तो ऐसा सन्नाटा छा जाता था कि मानो चूहों में कोई बिलौटा आ गया हो। 'म्याऊँ' शब्द सुनते ही बेचारा चूहा 'सर्वस्व समर्पयामि' का मंत्रोच्चारण करता हुवा जमींदार का घर भर देता और स्वयं बाबा गोरखनाथ का घन्टा हिलाता हुवा आनंद लेता था। जमींदार मूंछों पर ताव देता और दुम उठा कर वह चौकड़ी भरता था कि कसम खुदा की—

उसके आगे शंकर बाबा का नादिया भी बिलबिल्ला कर मात खा जाता था। और आज ? आज की न पूछिये। स्मरण-मात्र से ही रोंगटे खड़े होने लगते हैं तथा मारे घबड़ाहट के "कै" कर देने को जी चाहने लगता है। बाप रे बाप ! जमीन पर किसान का मौरूसी हक ! जमींदार को यह भी अधिकार नहीं कि वह किसान से एक इंच भी भूमि छुड़ा सके ! उस पर तुर्रा यह कि यदि कभी किसी से जरा भी बेगार ले तो जमींदर साहब को उलटे लेने के देने पड़ जायें। भला यह भी कोई न्याय है ? जमींदार तथा किसान का इस प्रकार से सम्बन्ध-विच्छेद कराना सरासर धांधली है या नहीं ? जाने कितनी पीढ़ियों से इन दोनों में शोषक तथा शोषित का पवित्र सम्बन्ध चला आ रहा था, उसमें काँग्रेस ने फांक पैदा कर दी या नहीं ? फिर भी आप मस्तराम जी से कांग्रेस के लिये 'वोट' मांगने का साहस करते हैं। आश्चर्य और महान् आश्चर्य !!

दिन रात खेतों में जान खपाने वाला किसान पेट भर रोटी खाय, बाल-बच्चों को जिलाये तथा तन भर कपड़ा पहिने और "मुफ्तखाऊ" जमींदार महाशय दूसरों की कमाई से एक मोटर तक न खरीद सकें, किसी "मंगला-मुखी" का चरण-स्पर्श भी न कर पायें तथा अपने 'आकाओं' के सामने दुम हिला-हिला कर उन की स्तुति भी न कर सकें, यह अन्धेर नहीं तो और क्या है ? मस्तराम जी इस अन्धेर को मेट कर ही दम लेंगे। बहुत दिनों तक यह अन्धेर खाता रहा !

क्यों न जमींदार को 'वोट' दिया जाय जो विधान सभा में जाते ही फौरन कानून बना दे कि "आज से पंचायत-राज्य" खत्म। सारी जमीन जमींदारों की और जमींदार के बाप की। जितने भी

गांव में झगड़े फसाद होंगे उन सब का बन्दर-बाँट जमींदार करेगा और जमींदार ही गाँव का एक मात्र सर्वेसर्वा होगा। किसान को बैल बांधने के लिए बिना जमींदार की आज्ञा लिये खूँटा गाड़ने का कोई अधिकार नहीं। प्रति खूँटा कम से कम एक छोटी मोटी थैली तो देनी ही होगी, इससे अधिक जितना भी जमींदार खींच सके। अपनी जमीन में से छे फीट लम्बी तथा तीन फीट चौड़ी भूमि किसान को उसमें सदा के सोने के लिए जो जमींदार देता है, वह क्या किसी के ऊपर कुछ कम एहसान है ?"

सम्पादक जी ! आप चाहे कुछ कहें, परन्तु मस्तराम जी तो हाथ मारकर कह सकतेहैं कि किसान अपना 'वोट' जमींदार ही को देगा। कारण किसान को जमींदार वर्ग से बड़ी-बड़ी आशायें हैं। जमींदार ने जितनी परती भूमि थी, वह सब हलके नीचे निकलवा दी। पशुओं के चरने की कौन कहे उन के खड़े होने के लिये भी स्थान कहीं शेष नहीं है। इसके लिये क्या किसान को जमींदार का कृतज्ञ नहीं होना चाहिये ? मस्तरामजी से यदि किसान राय लें तब तो मस्तराम भी यही कहेंगे कि इस भलाई के लिए किसान चाहे सात जन्म तक जमींदार के पैर धो-धो कर चरणामृत पान किया करे फिर भी वह जमींदार से उऋण नहीं हो सकता।

छोटे-छोटे तालाबों तथा पोखरों को पटवा कर उस पर खेती होने लगी है। इससे सत्य मानिये किसान जमींदार पर जी जान से फिदा है। पावें तो आज ही उनका मुँह चूम लें। पशुओं को तालाब का पानी पिलाना या तालाब के गंदे पानी से खेतों का सीचना कितना हानिकारक था, यह तो आपको मानना ही पड़ेगा। अतः जमींदार के इस उपकार के बदले यदि किसान जमींदार को 'वोट' देना चाहता है तो इस में किसी का क्या लगता

है। जमींदार ने जंगल कटवा कटवा कर भारतवर्ष में वर्षा के लिये खतरा पैदा कर दिया है, तो इसमें भी उसने कुछ अच्छाई ही की है। किसान घरों की बार बार मरम्मत करने से बच गया। और यदि कहीं सारा देश रेगिस्तान ही बन गया तो घर बैठे वह अरब का दृश्य देखा करेगा इसमें भी क्या कुछ कम आनंद आयेगा? अतः अभी तक जमींदार ने जो कुछ भी किया है, वह सब किसान के लाभार्थ ही है। अब मस्तराम की रायशरीफ़ में तो यही आता है कि किसान हर 'सीट' के लिये किसी झलारी दुमदार जमींदार को ही खड़ा करे। खड़ा ही न करे बल्कि धक्का दे दे कर उसे विधान सभा तथा संसद के दरवाजों के भीतर तक ढकेल कर ही दम लें।

कसम औघड़ बाबा की देश का यदि कोई कल्याण कर सकता है तो वह एक मात्र जमींदार ही है। जब कभी अवसर आया है तब जमींदार ने ही देश के लिये कलेजा निकाल कर सामने रखने का प्रयत्न किया है। अभी कल ही की तो बात है। 'गौराङ्ग महाप्रभुओं' को प्रसन्न करने के लिये जमींदार ने क्या क्या नहीं किया? दुम हिलाहिला कर उनकी चाटुकारी करने में जमींदार ने वह कमाल कर दिखलाया है कि सुभान अल्लाह साहब बहादुरों के लिये जैसी जैसी अमूल्य डालियां जमींदार ने पेश की हैं, उन्हें देखकर बेचारा कुबेर झेंप कर ऐसा भागा कि हजरत का आज तक पता ही न लगा मेमों से हाथ मिलाने तथा उनके साथ 'डान्स' करने में पनाले की तरह से किसान का पैसा जमींदार ने जिस शान से बहाया है, किसी माई के लाल में इतना साहस कहां जो उसका अनुकरण कर सके, फिर भी जो लोग जमींदार को 'वोट' देने का विरोध करते हैं, मस्तरामजी को उनकी बुद्धि के दिवालियेपन पर तरस ही आता है। उनके लिये तो मस्तराम जी चिल्ला

चिल्ला कर डंके की चोट पर नहीं 'नगाड़े' की चोट पर बलि पूर्ण 'कुड़मधुम' की चोट पर कह सकते हैं कि उनका दिमा बिलकुल ही 'फेल' हो रहा है और उनको आगरा या बरेली व सीधा ही टिकट कटा लेना चाहिये। अजी जमींदार को विधा सभा तथा संसद में भेजिये तो, फिर देखिये क्या 'लुत्फ' आता है हां आवश्यकता सिर्फ इतनी ही है कि 'वोट' देने के पहिले थोड़ी स अफीम और सरसों के तेल का प्रबन्ध पहिले ही से करलें, जिस बाद में फिर इन वस्तुओं को ढूंढने की आवश्यकता न पड़े।

भैया सम्पादक जी! जमींदार वर्ग का चुनाव-घोषणा-प मय उन के 'नारों' के तैयार हो गया है। कृपया देश की भलाई लिये इसे आज ही नहीं, इसी समय प्रकाशित कर दें:—

नारा नं० १—जमीन किस की ?
जो भुक्त खाय उसकी।
नारा नं० २—'वोट' किसको दोगे ?
यमदूत के भाइयों को।

घोषणा पत्र:—

(१) जमींदार-वर्ग का बहुमत होते ही वह प्रजातंत्र की रीढ़ प ऐसी कस कर लात मारेगा कि वह औंधा मुह होकर गिर जायग उसके स्थान पर एक राजा अथवा मनुष्य राज्य करेगा।

(२) जमींदर-वर्ग का बहुमत होते ही वर्ण-व्यवस्था को खूटे से ऐसा कस कर बांध दिया जायगा कि मजाल नहीं जो फिर कभ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र उछल-कूद मचा सकें या एक सा बैठने का साहस भी करें।

(३) जमींदार वर्ग का बहुमत होते ही किसान छठी का दूध याद करेगा।

(४) जमींदार का बहुमत होते ही जमींदार किसान से फिर वही अपना पुराना तथा पवित्र सम्बन्ध स्थापित करेगा, जिसके अनुसार तीन-तीन पीढ़ियां जमींदार की गुलामी करेंगी किन्तु मजाल नहीं कि मूलधन में एक कौड़ी की भी कमी हो।

(५) जमींदार का बहुमत होते ही जमींदार किसान की सारी सम्पत्ति को अपनी ही सम्पत्ति समझने लगेगा और उसको हज़म कर के न तो पेट पर हाथ ही फेरेगा और न डकार ही लेगा।

सम्पादक जी! अब तो मस्तराम जी को पूर्ण विश्वास है कि आप जमींदारों को सिंहासनारूढ़ करवाने में एड़ी-चोटी का पसीना ही एक नहीं करेंगे बल्कि जहां उनका पसीना गिरेगा उनके लिये वहां आप खून की नदियां तक बहा देंगे। आशा है, अब आप मस्तराम जी से सिवा जमींदार के और किसी के लिये 'वोट' मांगने का कष्ट न करेंगे।

जो महाशय हमारा मतलब समझकर 'वोट' देंगे उन्हें धेले की रेवड़ियां मस्तराम जी की ओर से पुरस्कार-स्वरूप में भेंट की जायेंगी। शेष सब बाल-गोपाल के मौज ही मौज है।

आपका वही—
२४ नवम्बर सन् १६५१ ' बौड़म सेवक,
मोहल्ला घोंघागली
घोंघापुर सिटी।

छठा चिट्ठा

ओ ओ सम्पादक जी महाराज !

जय हें हें महाराज की।

क्या वास्तव में आप हें हें महाराज को नहीं जानते ? आश्चर्य और महान आश्चर्य ! इनकी खीसे यदि एक बार आप देखलें तो कसम खुदा की आप का दिल फड़क उठे। हें हें महाराज जिससे भी मिलते हैं तो बन्दर कीसी खीसें निकाल कर ही मिलते हैं। चापलूसी करना, बात बात में हां हुजूर 'गरीब परवर' तथा 'अन्न दाता' इत्यादि दूसरों को खुश करने वाले शब्दों का प्रयोग करना, मौके बे मौके सभी स्थानों पर बड़े लोगों की 'पूँछ' का बाल बनना यह सब इन हजरत के नित्य के कर्म हैं। पढ़े लिखे इतना हैं कि मुश्किल से टो-टो कर 'अमरसिंह राठौर' की नौटंकी बांच लेते हैं परन्तु समझते अपने को पूर्ण विद्वान ही हैं। विधान सभा में पहुँचने के लिए बेचारे बुरी तरह से तड़प रहे हैं। आपने 'एलेक्शन' का शुद्ध उच्चारण कभी न कर पाया। जब कहेंगे तब 'अलक्शण' ही कहेंगे, परन्तु 'एलेक्शन' लड़ने के लिए खूब पर फड़फड़ा रहे हैं जरा सा 'गोला' खिला दीजिए, फिर देखिये कितनी जोर से 'तिड़ी काका तिड़ी काका' करने लगते हैं। पिंजड़े की खिड़की खोल दीजिये, फिर देखिये चोंच का मजा।

सत्य मानिये सम्पादक जी ! हें हें महाराज सबके दरवाजे खट खटा आये, परन्तु किसी ने भी आप की पीठ पर हाथ न रखा। कांग्रेस की चौखट पर आपने सर पटक दिया, समाजवादियों के घर की धूल फांकी, राम राज्य परिषद की गली के चक्कर काटे किसान मजदूर प्रजापार्टी के सामने अपनी लम्बी नाक रगड़ी मजा

पार्टी की मिन्नतें की, जनसंघ के चरण धो-धो कर पिये, हिन्दू-सभा की नाक में घुसने का प्रयत्न किया' साम्यवादियों के सामने कलाबाजी लगाई,, जमींदार-पार्टी के थूथन सहलाये, यहाँ तक कि हरिजनों के नथुनों में अपनी लम्बी चुटैया खांसी, परन्तु हायरे ! हृदय न पिघला, न पिघला अग्रगामी दल (फार्वर्ड ब्लाक) तक ने तो हैं हैं महाराज का साथ दिया नहीं और किसी की क्या कहें। 'अलक्ष्मण' का भूत हैं हैं महराज पर ऐसी बुरी तरह सवार है कि पावें तो उसके लिये अपनी नाक तक कटवा डालें, परन्तु किसी प्रकार 'अलक्ष्मण' का किला फतह हो जाय । जिसका मुंह तक न देखना चाहिये, बेचारे उसके तलवे तक सहलाने के लिये तैयार हैं। सब की खुशामदें करते करते तथा सब के सामने खीसें निकालते निकालते हैं हैं महराज का मुंह भी अब उसी प्रकार का बन गया है, लेकिन हजरत का काम अभी तक सिद्धि नहीं हो पाया है। और सिद्ध हो भी कैसे ? लोग कार्य प्रारम्भ करने के पहले गणेश जी इत्यादि देवताओं का नाम लेते हैं या किसी शुभ वस्तु के नाम से कार्यारम्भ करते हैं, परन्तु हैं हैं महाराज दिमाग के ऐसे तेज निकले कि आपने नमक तेल के नाम से कार्य आरम्भ किया है। अतः खुदा ही आप की खैर करे। जब हजरत को सभी संस्थाओं से धक्के दे दे कर बाहर निकाल दिया गया, तो आप स्वतंत्र उम्मीद वार की हैसियत से घोंसले के भीतर से झांकने लगे। झांकने ही क्यों लगे बल्कि 'गुटुरगूं गुटुरगूं' करते हुये समर भूमि में आ डटे। आव देखा न ताव आते ही कहना प्रारम्भ किया—"नमक तेल" तक का प्रबन्ध जो सरकार न कर सकी उसको 'वोट' देना महा-मूर्खता का कार्य है। भाइयो ! क्या वह समय आपको याद नहीं है जब आपको 'नमक-तेल' के लिये क्या-क्या दुख नहीं सहने पड़े। इत्यादि-इत्यादि।

सम्पादक जी ! आप ही बतलाइये, हें हें महाराज ने स्वयं ही अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार ली या नहीं? 'नमक-तेल' ही सर पर सवार है, तो इन हजरत की कुशल कैसे हो ! हें हें महाराज को 'नमक-तेल' मिल जाता और सब चाहे चापर हो जाता तो हें हें महाराज शायद यह न कहते। मस्तराम जी यही कहेंगे कि हें हें महाराज को एक सौ एक मिट्टी के तेल के पीपों से फौरन से पेश्तर स्नान करवाया जाय और उतनी ही बोरियों के नमक से 'भो भो महाराज! "लवणं समर्पयामि" के मंत्रोच्चारण से उनका पूजन किया जाय, तो शायद कांग्रेस का विरोध करना छोड़ दें। जहां कहीं भी आप हें हें महाराज को देखेंगे तो वहां आप उनको "नमक-तेल" ही के लिये रोते पायेंगे। हाय रे ! बिना "नमक-तेल" के हम कुत्तों की तरह तड़प-तड़प कर मर गये। हाय रे नमक-तेल, हाय रे नमक-तेल ! !

सम्पादक जी मस्तराम जी की समझ में तो यही आता है कि हें हें महाराज का वह रोना चौंसठो पैसे दुरुस्त है। कांग्रेस ने बड़ी जबर्दस्त गलती की जो वह हें हें महाराज को नमक तेल नहीं दे पाई और वे बिना नमक तेल के स्वर्ग सिधार गये। आप जो इन हें हें महाराज को सदेह विशाल तोंद वाला देख रहे हैं, तो वह तो उनकी छायामात्र है, वरना उनके प्राण पखेरू तो हायरे नमक तेल, 'हायरे नमक तेल' रटते हुये कभी ही उड़ गये थे। और सच भी है बिना नमक और मिट्टी के तेल के कोई जी भी सकता है या यही बेशर्म बन कर जी पाते! अजी राम भजिये कांग्रेस ने हैदराबाद जैसी विशाल रियासतों को भेड़ी बना दिया उच्छृङ्खल नराधिपों की उच्छृङ्खलता चुटकी बजाती ही काफूर कर दी, स्वतंत्र कहे जाने वाले छोटे छोटे राज्यों की पिसती कराहती हुई जनता का उद्धार किया, बार बार पड़ने वाले दुर्भिक्षों से गरीब देश भाइयों

के प्राण बचाये, जैसे भी बना वैसे लोगों को अन्न व वस्त्र पहुँचाया सम्पूर्ण संसार की स्थिति गत महायुद्ध के कारण डांवाडोल होते हुए भी देश की नैया को येन केन प्रकारेण खे कर पार लगाया तो इसमें कांग्रेस ने कौन सा कमालकर दिखाया। लाखों शरणार्थियों की, विस्थापितों की समस्या उसने हल करदी तो इसमें उसने कौन सा तीर मार दिया ! मस्तराम जी तो काँग्रेस की सराहना तब करते जब हें हें महाराज का घर मिट्टी के तेल और नमक से भर देती। हें हें महाराजको "तेल-नमक" न मिल पाया तो यह सब बेकार। अजी "नमक-तेल" मिल जाता चाहे देश रसातल या भाड़-चूल्हे में चला जाता।

हें हें महाराज को कोई भले ही कुछ कहे परन्तु मस्तराम जी उनकी पीठ ठोके बिना नहीं रह सकते। शाबाश बघेले ! कितनी दूर की कौड़ी लाया है ! 'नमक-तेल' वाला ऐसा आकाट्य तर्क है कि जिस के आगे बड़े बड़े तार्किक दांतों तले उंगली दबाते हैं। 'नमक-तेल' सर पर लाद कर हें हें महाराज जो चुनाव समर में कूद पड़े हैं, इससे मस्तराम जी को हें हें महाराज की विजय में किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं जान पड़ता। आज का 'वोटर' मूर्ख नहीं है। वह खूब समझता है कि 'नमक-तेल' की समस्या सर्वोपरि है। तेल जलाने भर को मिल जाय और नमक पाचन-शक्ति के लिये चूर्ण में डालने को मिल जाय, जिससे पाप-पुण्य, सच झूठ इत्यादि सरलता पूर्वक पच जाय तो समझिये देश का इसी से कल्याण है। आज के नागरिक को 'नोन-तेल' मिलता रहे, चाहे देश जहन्नुम में जाय ! कश्मीर का मसला तय हो या न हो, पाकिस्तान भले ही आक्रमण के लिये मुंह बाये खड़ा हो, परन्तु इसकी कोई परवाह नहीं। नमक तेल समय से मिलता रहे तो समझिये सब कुछ मिला।

सम्पादक जी ! मस्तरामजी को आशा नहीं, पूर्ण विश्वास भी

है कि इस बार हें हें महाराज चुनाव में पूर्ण विजयी होंगे। वे 'नमक-तेल' ही पर चुनाव लड़ रहे हैं तो फिर उनके विजयी होने में संदेह की गुँजायश भी तो नहीं है। मस्तराम जी हें हें महाराज को विश्वास दिलाते हैं कि वे मैदान छोड़कर भागें नहीं, अन्त तक डटे रहें। मस्तराम जी का "वोट" उनके लिये सुरक्षित है, चाहे यही अकेला 'वोट' उनके लिये क्यों न हो। जमानत तो हें हें महाराज की जब्त होगी ही, परन्तु उसके लिये भी मस्तराम जी कोई परवाह नहीं करते।

जनता को वे 'नमक-तेल' तो दिलवावेंगे ही, साथ ही उनमें कुछ और भी विशेष गुण हैं उसके प्रचारार्थ उन्हों ने 'पंडित जी' शीर्षक एक कविता भी भेजी है। कृपया उसे आप प्रकाशित करदें:-

मैं तीन काल का ज्ञाता हूँ।
मैं पंडित जी कहलाता हूँ।

१

भूतों को मार भगाता हूँ।
प्रेतों से जान छुड़ाता हूँ,
मैं खौर त्रिपुंड लगाता हूँ,
मैं ही चुड़ैल बंधवाता हूँ,
मैं दूध-पूत-धन-दाता हूँ।
मैं पंडित जी कहलाता हूँ।

२

ग्रह-दशा ठीक कर देता हूँ,
दुख क्षण ही में हर लेता हूँ,
मैं जिस पर कर धर देता हूँ,
उसके घर धन भर देता हूँ,

ले दान, मोक्ष दिलवाता हूँ।
मैं पंडित जी कहलाता हूँ।

३

जब कुछ मुट्ठी में पाता हूँ,
तो 'नाड़ी' मुदित मिलाता हूँ,
कन्या का भाग्य-विधाता हूं,
मैं ही तो ब्याह रचाता हूँ,
ले जन्म कुन्डली जाता हूँ।
मैं पंडित जी कहलाता हूँ।

४

यदि पड़ा भक्त है रोने में,
तो मिली मिठाई दोने में,
वह 'जंत्र' लपेटा सोने में,
सुख पाता हूँ उस रोने में,
ज्योतिष के दांव दिखाताहूँ।
मैं पंडित जी कहलाता हूं।

५

यदि द्रव्य नहीं मैं पाता हूँ,
तो झगड़े अमित लगाता हूँ,
सुन पुत्र जन्म मैं जाता हूं,
कह 'मूल-मूल' डरपाता हूँ,
मैं यों ही टके कमाता हूं।
मैं पंडित जी कहलाता हूं।

६

यदि कोई पंचक में मरता,
तो बन्दा मौजें है करता,
वह कौन न जो मुझसे डरता,
हूं शिष्य जनों के दुख हरता,
मैं रंग कार में लाता हूं।
मैं पंडित जी कहलाता हूं।

७

हैं मेरे वश में काल-दूत,
मैं कैसे छू सकता अछूत,
मैं ही हूँ भारत का सपूत,
है देव-शक्ति मुझ में अकूत,
कर वशीकरण दिखलाता हूँ।
मैं पंडित जी कहलाता हूँ।

८

जब कभी पकड़ में आता हूं,
"कह जो है सो" बच जाता हूं,
सुन 'आर्य' नाम घबराता हूँ,
भव-सागर पार कराता हूं,
मैं 'धर्म-धर्म' चिल्लाता हूं,
मैं पंडित जी कहलाता हूं।

६

जब पूर्ण दक्षिणा पाता हूँ,
तो फूला नहीं समाता हूँ,
पी भंग रंग दिखलाता हूँ,
मैं 'कजरी' बांच सुनाता हूँ,
नित वेद पुराण बनाता हूँ।
मैं पंडित जी कहलाता हूँ।

अच्छा विदा, फिर कभी मुठभेड़ होगी।

आपका वही—
भूला भटका,
गुमराह गली,
पथ-भ्रष्ठ नगर।

१ दिसम्बर सन १९५३

सातवाँ चिट्ठा

अरे ओ सम्पादक जी महाराज !

भैया तिकड़म बहादुर के नाम से आप परिचित ही होंगे। यदि वास्तव में भारत माता का कोई सपूत है तो वह भैया तिकड़म बहादुर ही हैं। जब से भारत का यह सपूत चुनाव-युद्ध में कूद पड़ा है, तब से बड़ों-बड़ों की धोती ढीली हुई जा रही हैं। और भैया तिकड़म बहादुर का जो हाल हो रहा है वह देखते ही बनता है। जली कौड़ी सी आप की आँखें पाताल लोक से केवल दो अंगुल के फ़ासिले पर रह गई हैं, और भी बेचारी मोटे मोटे शीशों वाली ऐनक से बुरी तरह से आच्छादित रहती हैं। सत्य मानिये सम्पादक जी ! उन शीशों पर दो-दो बालिश्त गर्द चढ़ गई है, परन्तु भैया तिकड़म बहादुर को इतना भी अवसर नहीं मिलता कि बेचारे शीशों को ज़रा साफ़ तो कर लें। उनकी इस ढलती अवस्था को देख कर मस्तराम जी को बड़ा तरस आता है।

धन्य है भारत माता, जिसने भैया तिकड़म बहादुर के सदृश्य सपूत को जन्म दिया। मस्तराम जी तो इस सपूत पर ऐसे जी जान से फिदा हैं कि पावें तो इस सपूत की लम्बी नाक ही दिन-रात सहलाया करें। अब से ठीक पाँच वर्ष पहले तक इस सपूत ने जन्म भूमि की जैसी सेवा की है, उसके स्मरण मात्र ही से प्रत्येक भारतीय का हृदय गद्‌गद् हो उठता है। गोरी मेम को प्रसन्न करने के लिये इस सपूत ने जो जो कलाबाज़ियाँ लगाई हैं, वे वास्तव में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं। गोरी मेम के 'टामी' कुत्ते का मुँह जिस अदा से भैया तिकड़म बहादुर ने सहलाया है, उस तरह हज़रत ने अपने चचा जान का भी मुंह न सहलाया होगा। जिस समय गोरी मेम अपने कुत्ते को सीटी बजा-

कर बुलाती थी तो सत्य मानिये, भैया तिकड़म बहादुर 'टामी' से भी पहले पहुँच जाते थे। उस समय कुत्ता कम दुम हिलाता था और भैया तिकड़म बहादुर उससे कहीं अधिक दुम हिलाते तथा गोरी मेम के चरण चाटने लगते। क्या इससे भी अधिक कोई मातृ-भूमि की सेवा कर सकता है ? मस्तराम जी को वह दिन अच्छी तरह याद है, जिस दिन भैया तिकड़म बहादुर को 'रायबहादुर' की पवित्र उपाधि मिली थी। इस उपाधि-प्राप्ति के लिये भैया तिकड़म बहादुर ने एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया था। पटवारी से लगाकर 'वायसराय' तक सभी छोटे बड़े देवताओं का अत्यन्त श्रद्धापूर्वक भैया तिकड़म बहादुर ने पूजन किया था। 'वायसराय' का विशाल भवन ही भैया तिकड़म बहादुर के लिये चारो धामों का केन्द्र बन गया था। चाटुकारिता के मंत्र से 'मेम भगवती' का जिस भक्ति से आराधन भैया तिकड़म बहादुर ने किया है, उसको देख कर बड़े-बड़े भक्त बिलबिला कर दांतों तले उङ्गली दबाते थे। बार बार की पूजा अर्चना तथा स्तुति से जब 'भगवान वायसराय' प्रसन्न हुये तब कहीं भैया तिकड़म बहादुर को 'रायबहादुरी' की पदवी वरदान-स्वरूप प्राप्त हो सकी थी।

हाँ, तो जिस दिन भैया तिकड़म बहादुर को यह वरदान मिला था, उस दिन का दृश्य देखने योग्य था। ग़रीब किसान की गाढ़ी कमाई इस सपूत ने जिस प्रकार पानी की तरह बहाया है, उसके आगे शिव, दधीच तथा कर्ण की दानशीलता भी एकदम मात है। परियों का नृत्य, रंगीन बोतलों की जगमगाहट ? 'गौराङ्ग महाप्रभुओं' का स्वति-वाचन तथा स्वर्ण-जित-जटित बहुमूल्य वस्त्रों का वितरण देख कर मस्तराम जी का तो हार्ट फेल होते-होते बच गया। अलौ इत्र-पूरित वायु-मंडल की सुगन्धि से भैया

तिकड़म बहादुर ने उस स्थान को दूसरा ही स्वर्ग बना दिया था। मजाल नहीं कि काला आदमी उधर से कहीं फटक भी सके या कहीं अगल-बगल में उसकी परछाहीं पड़ सके।

इतने पर भी यदि कोई भैया तिकड़म बहादुर की देश-भक्ति अथवा देश-सेवा पर किसी प्रकार का सन्देह करे, तो मस्तराम जी तो उसके लिये यही कहेंगे कि वह अपने दिमाग़ का किसी अच्छे डाक्टर से 'अपरेशन' करवा ले। उन दिनों भैया तिकड़म बहादुर यदि किसी खद्दर धारी को देख लेते थे तो आपे से बाहर हो कर उस पर ऐसा टूट पड़ते कि मानो कोई भैंसा गर्मी खा गया हो और वह नकेल तोड़ कर भाग खड़ा हुआ हो। तिरंगे झंडे को देखते ही भैया तिकड़म बहादुर का सवा ग्यारह छटाक खून फौरन सूख जाता था। इतना ही नहीं, इस सपूत ने कई बार तिरंगे को रौंदा, जलाया तथा अपमानित भी किया। अतः भारत माता यदि आज अपने इस सपूत पर गर्व करती हैं तो मस्तराम जी की राय में वह सोलहो आने उचित है।

तो क्या आप समझते हैं कि अब भैया तिकड़म बहादुर में देश-भक्ति की कुछ कमी है! जी नहीं। हर्गिज नहीं, मुतलक़ नहीं, कदापि नहीं। गत पांच वर्ष के अन्दर भैया तिकड़म बहादुर ने जनता-जनार्दन की जैसी सेवा की है, वैसी किसी भी भाई के लाल ने नहीं की खद्दर के सिवा भैया तिकड़म बहादुर ने जाना ही नहीं कि अन्य वस्त्र कैसा होता है। बेचारे का खद्दर पहनते पहनते शरीर तक छिल गया, परन्तु धन्य है यह सपूत देश भक्त जिसने पाँच वर्ष तक विदेशी कपड़े पहनने की तो कौन कहे उसने छुआ तक नहीं-देखा तक नहीं। आज से कुछ ही दिन पहले तक गला फाड़-फाड़ कर कांग्रेस शासन के सुप्रबन्ध की

भूरि भूरि प्रशंसा इस सपूत ने की तथा जनता का सेवक तथा नेता बनकर उसका पथ प्रदर्शन करने का ढोंग भी वह करता रहा। तो क्या इसमें उसने कम देश-भक्ति दिखलाई है ? हां, टट्टी की आड़ में कल तक शिकार करता रहा तथा लगे हाथ भ्रष्टाचार अथवा चोर बाजारी से जेबखर्च के लिये खद्दर के आवरण में यदि थोड़ा सा धन पीट भी लिया तो इसमें कौनसी गऊ इस देश के सपूत ने मार डाली !

अजी काँग्रेस ने भी तो भैया तिकड़मबहादुर के साथ बड़ा विश्वास घात किया जो इस सपूत को 'अलक्षण' लड़ने का टिकट ही नहीं दिया। यदि भैया तिकड़म बहादुर को भी थोड़े से दांव पेंच या पैंतरे दिखलाने का मौका कांग्रेस दे देती तो क्या इससे उसका हुक्का थोड़े ही बन्द हो जाता ! अतः काँग्रेस को लात मार कर आज यदि भैया तिकड़म बहादुर कांग्रेस से बाहर निकल गये हैं, तो इसमें इस सपूत ने क्या गलती की ? मस्तराम जी तो भैया तिकड़म बहादुर की इस दूरदर्शिता पर ऐसा रीझ गये हैं कि पावें तो भैया तिकड़म बहादुर के सर पर पांच कौड़ियां एकसौ एक बार उतार-पुतार कर किसी 'अलक्षण' के फकीर को दे दें, जिससे भैया तिकड़म बहादुर के दिमाग शरीफ को किसी कमबख्त की नजर तो न लगने पाये।

अभी भैया तिकड़म बहादुर घोर काँग्रेसी थे। उसके शासन-काल में उन्हें किसी तरफ से भी कोई खराबी नहीं दिखलाई देती थी और कुछ ही घंटो में कांग्रेस ऐसी पतित हो गई कि उसमें एक मिनट भी रहना भैया तिकड़म बहादुर के लिये महा पाप है, तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है ? कहा भी है कि घर में चिराग जला कर तब मस्जिद में जलाया जाता है, अतः भैया

तकड़म बहादुर को ही जब विधान सभा के दरवाजे पर सिजदा करने का मौका नहीं मिल रहा है तो क्या वे ऐसी काँग्रेस को लेकर भाड़ में झोंकें ! क्या कांग्रेस ही भैया तिकड़म बहादुर को खड़ा करेगी, तभी खड़े होंगे ! अजी राम भजिये। यदि भैया तिकड़म बहादुर की टांगों में तथा उनके घुटनों में बल है तो वे स्वयं भी 'सिगनल' की तरह सीधे खड़े हो सकते हैं।

सम्पादक जी ! भैया तिकड़म बहादुर 'वोटों' के लिये बुरी तरह से रो रहें हैं। रोते रोते उनका मुँह एक बालिश्त तक फैल जाता है। किसी प्रकार से भैया तिकड़म बहादुर की लाज बचाइये. यदि भैया तिकड़म बहादुर इस 'अलक्षण' में न जीते तो रो-रो कर खारा देश बहा देंगे, यह समझे रहियेगा। अतः अच्छाई इसी में है कि आज ही से आप इस सपूत की योग्यता की डुग्गी पीटना शुरू कर दें, जिससे इन हजरत को इतने अधिक 'वोट' मिलें जो वे जीवन-पर्यन्त न भूलें।

क्या कहा ? भैया तिकड़म बहादुर का भाषण सुनने की आप की प्रबल इच्छा है। तो कोई हर्ज नहीं। लड़ते समय दो बिल्लियों की खौखियाहट सुन लीजिये। जिस प्रकार बिल्लियां खौखिया-खौखिया कर प्रतिद्वन्दी पर आक्रमण करती हैं, फुसकारती हैं, पंजे मारती हैं तथा अन्त में खम्भे नोचने लगती हैं, ठीक वही आनन्द भैया तिकड़म बहादुर के चुनाव-भाषण में है।

शेष सब मौज ही मौज है।

आप का वही—
कपट-किशोर,
छल-छन्द रोड,
विश्वासघात नगर।

१५ दिसम्बर १९५१ ई०।

आठवाँ चिट्ठा

ओ सम्पादक जी महाराज !

जय औघड़ बाबा की ।

भैया ! टिकट मिल्यो नहीं, बिकट समस्या कीन ।
निकट रहे जे तौन हू, 'साटीफिकट' न दीन ॥
'साटीफिकट' न दीन, हाय ! अब कस कै होई ।
किहि के आगे मूड़, कहौ अब धरि कै रोई ॥
काँग्रेस दिहिसि निकारि, हायरे ! दैया-दैया !!
ह्वै गै फजिहति पूरि, सान सब मिटि गै भैया !

मस्तराम जी को काँग्रेस पर रह रह कर आज ऐसा क्रोध आरहा है कि कुछ पूछिये मत । आखिर काँग्रेस के दिमाग़ को हो क्या गया है, जो उसने भैया केंचुलबदल को विधान सभा के लिये टिकट ही नहीं दिया । मस्तराम जी ने तो उनकी सिफ़ारिश संसद के लिये की थी, परन्तु संसद की कौन कहे, विधान सभा से भी उनका नाम एकदम खारिज कर दिया गया है । यह तो काँग्रेस की सरासर धांधली ही है । काँग्रेस का जब यह दावा है कि वह यथा सम्भव देश के योग्यतम व्यक्तियों को ही टिकट देगी, तो भला बतलाइये भैया केंचुलबदल से बढ़कर योग्य व्यक्ति देश में कौन होगा । मस्तराम जी तो पूर्ण कुड़मधुम की चोट पर कह सकते हैं कि भारत बेचारे की क्या गणना, भैया केंचुलबदल के समान योग्य व्यक्ति संसार भर में भी नहीं मिलेगा । स्टालिन, ट्रूमन तथा चर्चिल जैसे कोटि कोटि व्यक्तियों को मस्तराम जी भैया केंचुलबदल के ऊपर जबर्दस्ती न्यौछावर कर देने को तैयार हैं । राजनीति के तो भैया केंचुलबदल एक प्रकाण्ड पंडित हैं ही, साथ ही जाने कितनी संस्थाओं के अनुभव भी उन्हें प्राप्त हैं ।

मस्तराम जी को भय है कि कहीं भैया केंचुलबदल को किसी की दृष्टि न लग जाय, अतः थोड़ा सा काला डोरा गले में बाँधने के लिये तथा साढ़े तीन छटाक कोयले का बुरादा मस्तक पर टीका लगाने के लिये भेजने की व्यवस्था कर रहे हैं।

हां ! तो भैया केंचुलबदल पाचसों घाटों का पानी पी चुके हैं। 'इस पाल की ऐसी तैसी, उस पाल की जय'— यही भैया केंचुलबदल का मूल-मंत्र है। भैया केंचुलबदल की सर्व श्रेष्ट योग्यता यह है कि आप जिस पत्तल में खाते हैं, उसी में छेद भी करते हैं। जहां जैसा अवसर देखते हैं, वहां वैसा ही रूप बना लेते हैं। ब्रिटिश राज्य में भैया केंचुलबदल अपने को किसी साहब बहादुर के बरखुरदार से घट कर न समझते थे। इस समय कोट पाइन्ट तथा टाई में यदि कहीं किसी बैल के सामने से निकल जाते तो कदाचित बैल यही समझता कि यह अपना ही कोई भाई है जो खूँट तुड़ा कर अभी अभी आया है तथा जिसके गले में टूटी हुई रस्सी अभी भी लटक रही है। साथ ही ऐसा भड़क उठता कि मानो साक्षात् शनिदेव सामने आ गये हों। भैया केंचुलबदल के लोमविहीन आनन तथा उनकी 'गिटिर-पिटिर ने जाने कितनों को भय में डाल दिया कोई कहता कि पीपल पर से उतर कर आया है, कोई कहता जी नहीं, 'भुइँफोड़वा' है, जमीन फोड़ कर अभी २ निकला है। धन्य है भैया केंचुलबदल की सहनशीलता को, जिन्हों ने इन बातों पर कभी ध्यान ही नहीं दिया। तभी तो 'सर' की उपाधि भैया केंचुलबदल ने सर कर पाई थी।

ऐसे 'महायोग्य' व्यक्ति को भी कांग्रेस न पहचान पाई, इसका मस्तराम जी को बड़ा दुख है। गांधी की आंधी में भैया केंचुलबदल इतनी जोर से उड़े कि क्या कोई छोटे से छोटा तृण

भी उस प्रकार उड़ पायेगा। उड़ते ही चले गये। पता ही न चला कि कहाँ विलीन हो गये। बहुत खोजने पर भैया केंचुलबदल मिले भी तो-सत्यमानिये सम्पादक जी! उनका पहचानना ही असम्भव हो गया। उनको पहचानने के लिये जाने कहाँ-कहाँ के विशेषज्ञ बुलाये गये, तब कहीं बड़ी कठिनता से वे पहचाने जा सके।

हाँ, तो अब सफेद टोपी भैया केंचुलबदल के सर पर से उतरती ही न थी। ऐसा मालूम होता कि मानों सर पर वह कीलों से जड़ सी दी गई है। परन्तु हाय रे कांग्रेस! उस ने फिर भी भैया केंचुलबदल को धोखा दिया। उसने भैया केंचुलबदल के त्याग तथा देश सेवा को एकदम भुला दिया। कांग्रेस भैया केंचुलबदल को यदि राष्ट्रपति नहीं तो कम से कम किसी सूबे का गवर्नर तो बना ही सकती थी। खद्दर की आड़ में थोड़ा सा भ्रष्टाचार ही तो भैया केंचुलबदल ने किया था, उसको भी कांग्रेस सरकार जब बर्दाश्त न कर सकी तो फिर भैया केंचुलबदल कांग्रेस से और कौन सी आशा करें! यह तो न हुवा कि कांग्रेस भैया केंचुलबदल को 'साँड़' बना कर छोड़ देती, जिससे भैया केंचुलबदल स्वच्छन्दता पूर्वक इधर उधर हरे-हरे खेत चरा करते तथा 'डहँका' करते। उल्टे अनुशासन की कार्य-वाही! वाहरे कांग्रेस के विचार!

आखिर सफेद टोपी ही में क्या लाल जड़े हैं, जो भैया केंचुलबदल उसी में चपते रहें। लाल टोपी क्या बुरी! जब से भैया केंचुलबदल ने अपने सर पर लाल टोपी रखी है, तब से वे ऐसे मालूम होते हैं कि मानों साक्षात देवता ही हों। मुंह में सोना ही डाले है। सत्य मानिये सम्पादक जी! कांग्रेस के दुर्गुणों से भैया केंचुलबदल अब इतना दुखी रहते हैं कि मस्तराम जी को भय है कि कहीं किसी दिन भैया केंचुलबदल आत्म-हत्या न कर लें जो मस्तराम जी भी

किसी तरफ के न रहें। आत्म हत्या किस तरह से करें कदाचित भैया केंचुलबदल ने अभी तक यह नहीं तय कर पाया है। कुवां में डूब मरें, गले में फांसी लगा लें, शूट कर लें या छटांक भर अफीम ही खा कर सो रहें— यह अभी वे कुछ निश्चय नहीं कर पाये हैं, नहीं तो भैया केंचुलबदल कभी ही चोला आड़ कर गये होते। देश के सुधारने का ठेका भैया केंचुलबदल ने इस प्रकार ले रखा है कि अपने साथ ही देश का भी कल्याण करके ही वे दम लेंगे। मस्तराम भैया केंचुल बदल के लिये बहुत चिन्तित रहते हैं। सत्य मानिये रात रात सोना हराम हो रहा है। हाय रे! यदि भैया केंचुल बदल को कुछ हो गया, तब तो देश किसी भी तरफ का न रहेगा। ऐसे सपूत-रत्न को खोकर कोई भी देश जीवित ही कैसे रह सकता है?

क्या कहा? भैया केंचुल बदल के शीश पर आज कल काली टोपी शोभायमान हो रही है! तो इसमें क्या हर्ज है! अन्त भला तो सब भला। अन्त में काली टोपी ही तो गुल खिलायेगी फिर एक ही बाना कोई जीवन पर्यन्त बनाये रहे, इससे बढ़कर किसी की और मूर्खता भी क्या हो सकती है! इसी बात पर रीझ कर मस्तराम जी भैया केंचुल बदल को 'बहुरुपिया के ताऊ' की उपाधि से विभूषित करने का विचार कर रहे हैं। साथ ही पांच कौड़ियां भी इनाम में देने का प्रबन्ध कर रहे हैं।

सम्पादक जी! भैया केंचुल बदल की योग्यता में अब भी किसी को कुछ संदेह हो सकता है? भैया केंचुल बदल को कांग्रेस ने टिकट नहीं दिया। इससे उसने भयंकर भूल की या नहीं? काली टोपी देकर ही अब भैया केंचुल बदल निर्वाचन-युद्ध में कूद पड़े हैं। अतः मस्तराम जी भी मतदाताओं से सिफारिश करते हैं कि वे भैया केंचुलबदल का पल्ला खूब कसकर पकड़े रहें। भैया केंचुल बदल

उछलें कूदेंगे बहुत; बहुत संभव है एक आध को 'हुड़ेसने भी दौड़ें। परन्तु सावधान रहियेगा, भैया केंचुल बदल की नकेल कहीं न छोड़ दीजियेगा नहीं तो देश नष्ट ही हो जायगा।

निर्वाचन का रंग ढंग देखकर भैया केंचुलबदल दुम उठा कर भागेंगे भी अवश्य। उस समय वे प्रायः अन्धे ही हो जायँगे; इधर उधर वे कुछ देखेंगे भी नहीं जिधरको मुंह उठायेंगे, उधर ही चौकड़ी भर कर निकलने का प्रयत्न करेंगे। आप लाख चुमकारेंगे, हरे-हरे नर्म चारे का भी आप चाहे जितना प्रबन्ध करेंगे, परन्तु आप भैया केंचुलबदल को उस समय हर्गिज-हर्गिज काबू में नहीं ला पायेंगे। सामने जो चपेटे मेंआ जायगा, उसकी फिर खैरियत नहीं है। चेतावनी दे देना मस्तराम जी का कर्तव्य है, आगे आप जानें और आप का काम जाने।

क्या वास्तव में आप भैया केंचुलबदल से मिलना चाहते हैं? तो पहले किसी बहुत बड़े पंडित से शुभ मुहूर्त निकलवा रखिये। साथ ही यह भी सूचित करने की कृपा करें कि कौनसी टोपी देकर वे आप से मिलें। भैया केंचुलबदल के यहाँ सब प्रकार की टोपियां बड़ी सावधानी से रक्खी रहती हैं।

एक बात और! भैया केंचुलबदल के खिलाफ बहुत बड़ा 'प्रोपेगैंडा' हो रहा है। यह बहुत बुरी बात है। कांग्रेस के बल पर आज 'ढोंढ़े-मंगरे' भी यह कह रहे हैं—

१

आये हौ का जानि कै, भैया! मांगै वोट।
यादि करौ उइ दिनन की, देति रहौ जब चोट॥

देति रहौ जब चोट, नित्त बेदखल करावौ।
करौ न सूधी बात, खेत लौं खड़े चरावौ॥
मस्तराम कह घुड़कि, न दौरौ अब मुँह बाये।
अब का दद्दू होति, भगत बगुला बनि आये॥

२

आये हौ सहिबौ ! कहां कै कै भारी ठाठ।
अबहूँ ददुवा ! पढ़ब का, सोरह दूनी आठ॥
सोरह दूनी आठ, बहुत दिन तक पढ़वायेहु।
बलिका बकरा जानि, सदैं बलिदान चढ़ायेहु॥
मस्तराम कह घुड़कि, न बहकब हम बहकाये।
जाव मलिकऊ घूमि, जौन पायन हौ आये॥

३

आये हौ कैसे कहौ ददूदू ! हमरे द्वार।
बड़े भाग्य दरसन दिहेउ, बड़के लम्बरदार॥
बड़के लम्बरदार, कहाँ अब रोवति घूमौ।
कहाँ गई वह सान, पायँ 'ढोंढ़े' के चूमौ॥
मस्तराम कह घुड़कि, होतिका अब डिढ़िआये।
हम कांग्रेस के साथ, हियां हौ कस तुम आये॥

४

आये हौ मलिकौ ! कहां, जपौ कौन यू मंत्र।
का ददुवा ! पागल भयेउ, रटौ स्वतंत्र-स्वतंत्र॥
रटौ स्वतंत्र-स्वतंत्र, कहां घूमौ धुंधुवावति।
परिगा चक्कर कौन, कौन है धौं भरमावति॥
मस्तराम कह घुड़कि, न मानति हौ समझाये।
कांग्रेस जाई जीति, अकारथ हौ तुम आये॥

५

आये हौ ठकुरौ ! कहां, देखौ आपन काम ।
वोट कहां तुमका भला ! लेउ राम का नाम ॥
लेउ राम का नाम, न घूमौ धम धगा कै कै ।
पहिले मुसरी मारि, चले हौ गोबर लै कै ॥
मस्तराम कह घुड़कि, न होई कुछ रिरियाये ।
बैठौ चुप्पी साधि, वृथा हौ दौरति आये ॥

६

भैया ! गिरगिट की तना, बदलेउ बहुतै रंग ।
बहुत बुरा बचुवा किहेउ, परेउ कांग्रेस-फंग ॥
परेउ कांग्रेस-फंग, तंग हुइ जाई हुलिया ।
ढंग किह्यो यू कौन, भूलि जाई घर कुलिया ॥
मस्तराम कह घुड़कि, करौ का दैया- मैया ॥
परी मूड़ पर आइ न अब बचि पैहौ भैया ॥

७

भैया ! रोकेन बहुत कुछ, खड़े न होउ स्वतन्त्र ।
सोचि समुझि मुनुवां ! चलौ, रटौ न एकुइ मन्त्र ॥
रटौ न एकुइ मंत्र, मुला तुम मानौ कैसे ।
घनचकर ह्वै गयेउ, चढ़ा है कन्धर जैसे ॥
मस्तराम कह घुड़कि, न फेंकौ पेड़ा-लैया ।
इ हैं खाऊ बीर, खाइ चलि देहैं गैया ॥

८

भैया ! तुमका का कही, कौन ज्ञान हरिलीन ।
की भकुहा के तुम कहे, परचा दाखिल कीन ॥

परचा दाखिल कीन, अकारथ खरचा करिहौ।
हँसि हैं सब ठट्ठाइ, अपनि जो चरचा करिहौ॥
मस्तराम कह घुड़ुकि, न कोऊ है उठवैया।
समुझि बूझि का तनिक, भिड़ेउ कांग्रेस ते भैया॥

हाय रे काँग्रेस! आज यदि भैया केंचुलबदल को काँग्रेस ने टिकट दे दिया होता तो भैया केंचुलबदल का इस प्रकार अपमान थोड़े ही होता।

शेष मय 'भङ्ग घुटना' के सब आनन्द ही आनन्द है।

आपका वही——
उलटफेर खाँ,
गिरगिट गली,
मतलबपुर जङ्क्शन।

२२ दिसम्बर सन १९५१ ई०।

नवाँ चिट्ठा

श्री श्री श्री सम्पादक जी महाराज !

जय हो श्री धर्मध्वज जी महाराज की।

माना कि आप एक प्रमुख पत्र के सम्पादक हैं, विद्वान हैं, परन्तु धर्म किसे कहते कहते हैं, यह आप हर्गिज-हर्गिज नहीं जान सकते। धर्म की जितनी व्यापक परिभाषा श्री धर्मध्वज जी महाराज कर सकते हैं, वैसी परिभाषा बड़े से बड़ा धर्माधिकारी भी नहीं कर सकता। श्री धर्मध्वज जी महाराज के मतानुसार वास्तविक हिन्दू धर्म वह है, जिसमें, अपने ही भाइयों को-अछूतों को-एकदम अपना दुश्मन समझे। कुवां, तालाब, तीर्थस्थान तथा मन्दिर इत्यादि को-जनता के स्थानों को—जो अपने ही चचाजान की बपौती समझे, वही पूर्ण धर्मात्मा है। दीन-हीन अन्त्यजों को देख कर जिसकी गुदी का पारा एकदम ११० डिग्री तक न पहुंच जाता हो, उसे श्री धर्मध्वज जी महाराज पूर्ण विधर्मी समझते हैं। श्री धर्मध्वज जी महाराज पूर्ण हिन्दू उसको समझते हैं, जिसमें 'साठा सो पाठा' के अनुसार एक साठ वर्ष का बूढ़ा चाहे तो दस विवाह करले; परन्तु विधवा यदि पुनर्विवाह का नाम भी ले ले तो वह एकदम बहिष्कृत ! बुढ़ऊ बाबा चाहें तो नित्य एक पत्नी छोड़ते रहें, परन्तु स्त्री यदि कहीं छुड़ौती का नाम ले ले तो बाप रे बाप ! पूरा ज्वालामुखी फट पड़ेगा। पति देवता भले ही वेश्या गामी हों, आवारा हों, रात-रात घूमते हों, कौड़ी भी न कमा सकते हों परन्तु पत्नी को अधिकार नहीं कि वह चूं भी कर सके। पैर की जूती जो वह ठहरी। भला पैर की जूती के भी जबान होती है ?

इन्हीं सब बातों को देखकर श्री धर्मध्वज जी महाराज चुनाव संग्राम में धम से कूद पड़े हैं। भला हिन्दू धर्म खतरे में हो फिर भी श्री धर्म-ध्वज जी महाराज मस्तक पर एक सौ ग्यारह की छाप लगाये चुपचाप बैठे रहें, यह कैसे सम्भव हो सकता है। अजी फिर कांग्रेस-मंत्रिमंडल बन गया तब तो देश रसातल ही चला जायगा। 'धर्मनिरपेक्षता' किसे कहते हैं भले ही श्री धर्म-ध्वज जी महाराज यह न जानते हों, परन्तु धर्म की आड़ से उन्हें एक बाण छोड़ना ही है। बाण लगेगा तो वाह-वाह, न लगेगा तो वाह-वाह। कहा भी है—

'बदनाम भी होंगे तो क्या नाम न होगा !'

हां, तो आजकल श्री धर्मध्वज जी महाराज इतने जोरों से दिन रात 'धर्म-धर्म' चिल्लाते हैं कि उनके सामने बेचारा 'लाउड-स्पीकर' भी पनाह मांगता है। 'धर्म-धर्म' चिल्लाते-चिल्लाते श्री धर्मध्वज जी महाराज का गला फूटा बांस हो रहा है, फिर भी उनके चीखने में क्या मजाल कि कौड़ी भर भी कमी आई हो। गला साफ करने के लिये मस्तराम जी थोड़ा सा कुलंजन भेजने की व्यवस्था कर रहे हैं, जिससे धर्म का यह ठेकेदार बेचारा उसी गति से दिन दूने रात चौगने धर्म धर्म चिल्लाता तो रहे। सम्पादक जी ! सत्य मानिये श्री धर्मध्वजजी महाराज धर्म के लिये इतने चिन्तित रहते हैं कि आज पांच वर्ष से उन्हें एक मिनट के लिये नींद नहीं आई है ! नींद आये भी कैसे ! छत्तीस करोड़ मन धर्म का बोझ जिसके सर पर हर समय लदा रहता हो वह बेचारा पलक मार ही कैसे सकता है ? सत्य मानिये, इतने भारी बोझ से श्री धर्मध्वज जी महाराज की गर्दन टूटी जा रही है। और कमर ? कमर तो बिलकुल धनुष के आकार की हो गई है। फिर भी श्री धर्मध्वज जी महाराज अपने सर पर इतना भारी बोझ किसी प्रकार उठाये तो हैं ही। मस्तराम

जी को दुख है तो यही कि इतने पर भी कोई माई का लाल ऐसा नहीं निकला कि जो श्री धर्मध्वज जी महाराज को इस भारी बोझ के उठाने में उन्हें कुछ सहायता देता।

सम्पादक जी! आप ने सम्भवतः तीन ही 'हठ' सुने होंगे—राजहठ, त्रियाहठ तथा बालहठ। आज से चौथा 'हठ' भी श्री धर्मध्वज जी महाराज की कृपा से जान लीजिये। वह है—'श्री धर्मध्वज जी महाराज का हठ।' श्री धर्मध्वज जी महाराज का हठ है कि यदि कांग्रेस 'धर्म निरपेक्षता' की बात छोड़ दे तो वे 'अलक्षण' से हट जायेंगे। धर्म निरपेक्षता में क्या खराबी है, यह उनसे न पूछिये। उनकी बात सीधे ही मान लीजिये, बस, 'हठ' ही तो है। 'हठ' हठ ही है, भैया! देश-देशान्तर में जाकर तथा सब कहीं का भोजन करके भी हिन्दू हिन्दू ही बना रहे, यह कैसे हो सकता है? विदेश में भारत का सैनिक जाय, भारतमाता की रक्षार्थ अपने प्राण हथेली पर लिये घूमे, विजय प्राप्त करके आवे—फिर भी हिन्दू समाज उसे अपने में मिला ले यह अधर्म नहीं तो और क्या है। माना कि अपनी जान को खतरे में डालकर कोई सिपाही विजयी होकर स्वदेश को आया है। माना कि उसी की बदौलत भारतवासियों पर कोई आँच नहीं आने पाई है, लेकिन वह अब हिन्दू कैसे रह गया, जब कि वह दूसरे के हाथ का बनाया हुआ भोजन कर आया है। अतः यदि कांग्रेस कोई ऐसा कानून बनाती है, जिससे हिन्दू हिन्दू ही रहे तो सरासर अन्याय तथा अधर्म है कि नहीं?

इसी से तो खीझकर श्री धर्मध्वज जी महाराज कांग्रेस का विरोध करने के लिये मैदान में आ डटे हैं। वह धर्म ही काहे का जिसके मानने वाले प्रति वर्ष घटते ही न रहें। किसी को अछूत

कहकर निकाल दिया; किसी को विदेश जाने के अपराध में लटका दिया, तो किसी पर किसी मुसलमान का थूक पड़ जाने के कारण धक्के देकर बाहर कर दिया। कोई बहाना मिल जाय कि कान पकड़कर बाहर। और सच पूछिये तो वास्तविक हिन्दू-धर्म है भी यही। आज का हिन्दू धर्म वह व्यापक हिन्दू धर्म थोड़े ही है, जिससे अपने ही जाति भाइयों की कौन कहे, अन्य धर्मावलम्बी भी हज्म हो जाते थे। वह हिन्दू धर्म अब है कहाँ, जिसमें चैतन्य की कौन कहे, पेड़-पत्थर तक परमात्मामय हो जाता था। 'सिया राममय सब जग जानी। करहुँ प्रणाम जोरि युग पानी।' का उपदेश शायद तुलसीदास जी अपने साथ ही लिये चले गये। तभी तो श्री धर्मध्वज जी महाराज हिन्दू धर्म के लिये इतना चिन्तित हो रहे हैं।

बाप रे बाप! कांग्रेस यदि कोई ऐसा कानून बना देगी, जिसमें अपना बिछुड़ा हुआ भाई फिर अपने में मिल सके, या कुयें में गिरे हुये को फिर ऊपर उठने का अवसर मिल जाय तब तो बेचारे श्री धर्मध्वज जी महाराज को सीधी ही आत्महत्या करनी पड़ेगी।

श्री धर्मध्वज जी महाराज तो पूर्ण हिन्दू उसे समझते हैं जो अपने ही हाथ का बना हुआ भोजन करता हो तथा समुद्र-पार जाने की कौन कहे, जो उस तरफ दृष्टि भी न डालता हो। अतः मस्तराम जी तो जवाहर लाल जी को तभी 'वोट' देंगे जब वे यह प्रण करें कि वे कभी भी विदेश नहीं जायेंगे, न अबलाओं की ही कोई बात सुनेंगे और न किसी अन्य धर्मावलम्बी को ही इस देश में रहने देंगे। हां, यदि उन्हें विदेश जाना ही पड़े तो एक चौबन्दी भिर्जई पहनें, घुटनों तक धोती बांधे अथवा एक लंगोटी ही लगा कर जायँ। कुश की चटाई बगल में रखें, जिसमें यदि

उन्हें बैठना हो तो विधर्मियों से दूर उसी कुश की चटाई पर बैठ जांय। जब किसी से बात-चीत करना हो तो अपना मुँह घुमाये रहें—पीठ ही उनकी तरफ़ रखें—ताकि अन्य मतों के मानने-वालों के बोलते समय उनके मुंह से थूक की कोई छींट उड़कर उनके मुँह अथवा शरीर पर न पड़ जाय और वे हिन्दू न रह जांय।

एक बात और। जवाहर लाल जी अपने ही हाथ का बनाया हुआ भोजन भी करें। आख़िर तो ब्राह्मण ही हैं। जिस समय ट्रुमन चर्चिल तथा स्टालिन जैसे धुरन्धर राजनीतिज्ञों का गहरे मसलों पर विचार-विमर्श हो रहा हो. उस समय जवाहर लाल जी बड़ी सी चुटैया खोले नंग-धड़ंग 'भौंरी भर्ता' बना रहे हों तथा बुलाये जाने पर भी साफ़ कह दें—'भौंरी लगा रहे हैं, खा लेंगे तभी आवेंगे।' जब तक इतनी योग्यतायें जवाहर लाल जी में नहीं होंगी तब तक श्री धर्मध्वज जी महाराज जवाहर लाल जी का पिंड नहीं छोड़ सकते।

श्री धर्मध्वज जी महाराज लोक सभा में जाकर तथा प्रधान-मंत्री होकर दिखला देंगे कि धर्म क्या है। अगले पाँच वर्ष में दस करोड़ भी शिखाधारी आदि आपको मिल जांय तो मस्तराम जी का जिम्मा।

एक बार और बोलो 'श्री धर्मध्वज जी महाराज की जय।'

आपका वही—
गोबर गणेश,
मोहल्ला खाली खोपड़ी,
शहर पागलपुर।

१२ जनवरी सन १९५२ ई०

दसवाँ चिट्ठा

हरे हरे सम्पादक जी महाराज !

जय हो त्रिकालज्ञ महाराज की ।

जी हां ! भगवान के भी एक चचा जान पैदा हो गये हैं । जो बात स्वयं भगवान भी नहीं जानते हैं, वह भैया लाल बुझक्कड़ से पूछ लीजिये । त्रिकाल के जानने वाले भैया लाल बुझक्कड़ से जो प्रश्न चाहिये, कर लीजिये कुछ न कुछ उत्तर भैया लाल बुझक्कड़ अवश्य ही देंगे । यह बात दूसरी है कि भैया लाल बुझक्कड़ को स्वयं अपनी गुद्दी की खबर न हो परन्तु भविष्य की बात अवश्य ही फ़ौरन बतला देंगे । अफ़ीम की पीनक में जब कभी आप चौंक पड़ते हैं तो क़सम खुदा की पूरा लुत्फ़ आ जाता है । अभी कल भी आप अपनी भविष्य वाणी चीख-चीखकर कर रहे थे । आपका दावा है कि कांग्रेस इस चुनाव में कभी भी नहीं जीत सकेगी । इतना ही नहीं भैया लाल बुझक्कड़ इसके लिये हाथ मारकर दो तोले अफ़ीम की बाजी लगाने को भी तैयार हैं । कांग्रेस क्यों नहीं विजयी होगी, इसका एक मात्र कारण भैया लाल बुझक्कड़ की दृष्टि में यही है कि कांग्रेस ने जो 'नशाबन्दी' की योजना चालू की है, उसी की बदौलत उसे 'वोट' नहीं मिलेंगे ।

सम्पादक जी ! आप मानें या न मानें, परन्तु भैया लाल बुझक्कड़ की यह बात १६२ पाई ठीक है । आखिर कांग्रेस को यह हो क्या गया जो भैया लाल बुझक्कड़ को थोड़ी सी अफीम भी खाने को नहीं देती । थोड़ी सी अफीम खाकर यदि भैया लाल बुझक्कड़ थोड़ी देर के लिए स्वर्ग में घूम आते तो इसमें कॉंगरेसियों की गाँठ

से जाने क्या खर्च हो जाता था भैया लाल बुझक्कड़ की देह सूखकर चिमड़ी होगई है या आनन शरीफ में कौड़ियों के समान दो आँखें मात्र दृष्टिगोचर होती हैं तो इसमें किसी का क्या हर्ज है। कभी कभी लड़के भूत समझकर भाग खड़े होते हैं तो इसमें बेचारे लालबुझक्कड़ का क्या दोष।

बतलाइये भला कांगरेस को कोई वोट देही कैसे सकता है जब वह 'नशा-पानी' के ही बन्द कर देने पर तुली हुई है पैसा लाल बुझक्कड़ की जेब से खर्च हो रहा है अपना घर फूंककर तमाशा भैया लाल बुझक्कड़ देख रहे हैं अपना सर्वनाश भैया लाल बुझक्कड़ कर रहे हैं तो कांग्रेस खांमखाँ क्यों टाँग को अड़ा रही है। उसको क्या पड़ी है जो भैया लाल बुझक्कड़ का पशु बनने से रोक रही है इसी बात पर तो भैया लालबुझक्कड़ ने भविष्य वाणी करदी हैं कि कांगरेस हर्गिज हर्गिज नहीं जीतेगी और जीतेगी भी कैसे? जब भैयाललबुझक्कड़ का ही वोट बैल वाले बक्स में नहीं पड़ेगा तब भला कांगरेस कैसे जीत सकेगी। उनके साथ ही और कोई 'नशा-पानी' करने वाला भी तो अपना 'वोट' कांगरेस को नहीं देगा। भैयालाल बुझक्कड़ का दावा है कि जो पार्टी 'नशा-पानी' की व्यवस्था ठीक प्रकार से करेगी, उनका कीमती 'वोट' उसकी सेवा में अर्पण होगा जिसके द्वार पर एक ओर हर-हर महादेव कहकर "चरस" की चिलमें उड़ रही हों, दूसरी ओर 'भंगभवानी' की आराधना हो रही हो उसी को भैया लाल बुझक्कड़ अपना अमूल्य 'वोट' देंगे।

बतलाइये तो भला जिसने नागा बाबाओं के साथ बैठ कर कभी भी न तो गांजा का ही सेवन किया है और न कभी चंडू का ही मजा लिया हो, उसको 'वोट' देना मूर्खता है या नहीं? बिना नशा का सेवन किये हुये भी भला ऐसा कोई हो सकता है कि

जिसका मस्तिष्क दुरुस्त रहे भला बिना नशा के कोई भी जीवधारी अच्छे से अच्छा कानून बना सकता है यदि नशा न हो तो क्या वह ग्याक विदेशी राजनीतिज्ञों की बात को समझ सकेगा। भैया लाल बुझक्कड़ तो यहां तक कहने को तैयार हैं कि बिना नशा-सेवन के मनुष्य मनुष्य ही नहीं रह सकता। वह तो पशु से भी गया गुजरा है, अतः उसको 'वोट' देने से देश का बहुत बड़ा अहित होने की सम्भवना है। नशा ही तो एक मात्र ऐसी वस्तु है जो विद्या, बुद्धि, ज्ञान तथा सूझ बूझ की देने वाली है। हाय रे! उसी नशा की यह अवहेलना! उसका इतना तिरस्कार! वाहरी कांगरेस सरकार बलिहारी है तेरी बुद्धि को! तू आज तक 'नशा-माहात्म्य' को समझ ही न सकी। फिर भी देश से 'वोट' मांगने का साहस!' बिना 'नशा-पानी' के 'वोट' कैसा जी!

यदि वास्तव में भैया लाल बुझक्कड़ का 'वोट' काँग्रेस को लेना है तो वह फौरन से पेश्तर ऐसा कानून बनाने का वचन दे, जिसके अनुसार प्रत्येक नागरिक के लिये कम से कम दो तोले अफ़ीम खाना अनिवार्य कर दिया जाय। जो किसी भी प्रकार का नशा-पानी न करे उसको फौरन फांसी की सजा दी जाय। जो नशा-पीकर नशे में चूर होकर—शान्ति भंग न कर सके उसको आजन्म कारावास का दण्ड दिया जाय। चिलम के नशे से जिसकी आंखें रक्त वर्ण न हो गई हों तथा जो पूरा यमराज न बन गया हो, जिसके कारण बहू-बेटियों की लाज खतरे में न पड़ गई हो उसको एक दम काले पानी की सजा।

सोचिये तो भारत-भूमि से यदि नशे का ही लोप हो जायेगा, इस पवित्र आर्य भूमि पर चिमटा धारियों को अपने मुँह महाराज को जब ज्वालामुखी ही न बनने दिया जायगा तो देश एकदम रसा-

तल पहुँच जायगा या नहीं ? अजी जब सइ पवित्र देश में नशा ही न रह जायगा तो क्या खाक यहाँ राम राज्य बन सकेगा जब नशा ही नहीं तो प्रजातंत्र कैसा ! क्या प्रजातंत्र में यह भी होता है कि उसकी प्रजा बिना नशा के त्राहि-त्राहि करके परलोक सिधार जाये। अतः नशा विरोधियों को जब 'वोट' दिया जायगा तो देश एक दम रसातल में पहुँच जायगा या नहीं ? बतलाइये भला तब लाल बुझक्कड़ की क्या दशा होगी ? अतः भैया लाल बुझक्कड़ यदि नशे पर ही चुनाव लड़ने की बात कहते हैं तो इसमें क्या बुरा कहते हैं ?

संपादक जी ! मस्तराम जी को विश्वस्त सूत्र से पता लगा है कि सभी 'नशेबाजों की एक गुप्त कान्फरेन्स 'चण्डूपुर' में भैया लाल बुझक्कड़ के सभापतित्व में हो चुकी है। उन्होंने 'नशेबाज-फ्रन्ट' स्थापित किया है। उन्होंने काँग्रेस से पूर्ण मोर्चा लेने का भी निश्चय किया है। 'चिलम-बहादुर' को विधान सभा के लिये तथा 'मियां अफीम अली' को लोक सभा के लिये खड़ा भी किया है। उनका चुनाव चिन्ह 'जलती हुई चिलम' है भैया लाल बुझक्कड़ का कहना है कि जब 'जलता हुआ दीपक' चुनाव चिन्ह हो सकता है तो 'जलती हुई चिलम' ने ही क्या खता की है जो वह चुनाव-चिन्ह न बने।

हां तो 'नशेबाज फ्रन्ट' पूरा कार्य कर रहा है। प्रचार के सिल सिले में उसकी अनेक सभायें हो चुकी हैं। वह 'नशे' के नाम पर ही 'वोट' माँगता है। उसका स्पष्ट मत है कि यदि 'नशेबाज फ्रन्ट' विजयी हुआ और उसका मंत्रिमंडल बना तो वह संसार के सभी झगड़ों से दूर होकर केवल नशा 'प्रचार' में ही अपनी सारी शक्ति लगा देगा। कोई मनुष्य यदि बिना नशा किये हुये छोटी या बड़ी किसी भी कौंसिल या असेम्बली में प्रवेश करेगा तो उसी सभा में उल्टा टांग दिया जायगा और माघ पूस के महीने में एक सौ एक

बाल्टी बासी भंग के घड़ों से उसको स्नान करवाया जायगा। नशेबाज मंत्रिमंडल प्रत्येक नागरिक को नशेबाज बनाकर ही छोड़ेगा। उसका बढ़ता हुआ कार्य देखकर मस्तराम जी को पूर्ण विश्वास है कि 'नशेबाज फ्रन्ट' पूर्ण विजयी होगा। और कांग्रेस टापती ही रह जायगी। 'नशेबाज-फ्रन्ट' के नारे यह हैं—

(१) देश किसका–नशेबाजों का।
(२) वोट किसको दोगे–सबसे बड़े पियक्कड़ को।
(३) अपना 'वोट' किसमें डालोगे– जलती हुई चिलम में।
(४) देश का नेता कौन–चिलम बहादुर।
(५) कानून कौन बनायेगा–अफीम अली।

सम्पादक जी! भैया लाल बुझक्कड़ की भविष्य वाणी में अब मस्तरामजी को भी कुछ संदेह नहीं रह गया है। भैया लाल बुझक्कड़ का कहना है कि उनका एक 'वोट' नशेबाज होने के नाते औरों के एक हजार वोटों के बराबर है। इस अनुपात से भी भला भैया लाल बुझक्कड़ के जीतने में कोई शक कर सकता है?

शेष सब वोट ही वोट है। अच्छा बिदा।

आपका वही—
औघड़ पंथी, उजाड़ गली,
नंगा नगर।

१६ जनवरी सन् १६२२

ग्यारहवाँ चिट्ठा

अर्रर्र सम्पादक जी गहाराज !

जय शुक्राचार्य महाराज की

आज होली है न इसलिये आप घोंचू पण्डित का परिचय पाने के लिये छट पटा रहे हैं। अच्छा तो सावधान होकर सुनिये परमात्मा का जरा खिलवाड़ तो देखिये सबको तो दो दो आँखें दी परन्तु बेचारे घोंचू पण्डित को एक ही आँख देकर टरका दिया। वाह भाई, यह अच्छा न्याय है ! परन्तु आपके आशीर्वाद से घोंचू पण्डित को कोई इसकी परवाह नहीं है। घोंचू पण्डित की एक ही आंख में इतना दम है कि बड़े बड़े दो आंख वालों को ऐसा नाच नचाती है कि देखते ही बनता है लाला गड़बड़प्रसाद को ठीक होली के दिन, जबकि चारों ओर पिचकारियाँ चल रही थीं घोंचू पण्डित ने ऐसा उल्लू बनाया कि बेचारे उस दिन से आज तक कहीं वे दिखाई ही न दिये मारे शर्म के बेचारे जाने कहां हवा हो गये।

हां तो लाला गड़बड़प्रसाद कट्टर सनातन धर्मी हैं। शकुन अपशकुन का लाला गड़बड़प्रसाद को बड़ा ध्यान रहता है। दरवाजे से निकलने के पहले, जैसे घोंसले से कौवा टोंट बाहर निकाल कर इधर उधर खूब सर घुमा घुमा कर देख लेता है ठीक उसी प्रकार लाला गड़बड़ प्रसाद भी छिपे छिपे अध खुली आँखों से देख लेते हैं कि बाहर की तरफ कोई अपशकुन तो नहीं है। कहीं जाते समय यदि खाली घड़ा, तेल या काना मिल गया तो खून का घूट पी कर बेचारे घर को वापस आ जाते हैं। इस प्रकार कई कई दिन तक बेचारों को घर में ही बैठे रह जाना पड़ता है। जब कुछ

शकुन मिले तब तो बाहर जायें।

घोंचू पंडित पड़ोस ही में रहते हैं। कभी तो आप ठेट गवारू भाषा बोलते हैं। और कभी ऐसी कि क्या मजाल जो शीन 'काफ' में भी कुछ फर्क पड़ जाय। लाला गड़बड़ प्रसाद को घोंचू पंडित का बड़ा ख्याल रहता है। रास्ते में घोंचू पंडित मिल जांय तो फिर देखिये लाला गड़बड़ प्रसाद का हाल! ऐसा भन्ना उठते हैं कि मानों कौवा उनकी नाक ही लेकर उड़ गया हो। एक दिन लाला गड़बड़ प्रसाद को एक आवश्यक कार्यवश बाहर जाना था। सोचा ऐसा न हो कि घोंचू पंडित ही पहले दर्शन दें। अतः एक दिन पहले ही घोंचू पंडित को बुलाकर कहा "पांडे जी! यह लो दस रुपये न हो तो कल गंगा स्नान ही कर आओ।"

घोंचू पण्डित की आंख फौरन ताड़ गई कि हो न हो लाला गड़बड़प्रसाद किसी कार्यवश बाहर जाना चाहते हैं। अतः यह मुझे यहां से हटाने का बहाना मात्र है। वैसे कहां के बड़े दानी हैं लाला जी। घोंचू पण्डित ने बड़ी प्रसन्नता से रुपये ले लिये और धोती झोला ले कर अनेक आशीर्वाद देते हुये लाला गड़बड़ प्रसाद के सामने ही घर से चल दिये।

रात्रि के दो ही बजे लाला गड़बड़ प्रसाद घर से निकल पड़े। भय था ऐसा न हो कुछ अपशकु सामने आजाय। बाहर सीढ़ियों पर से उतर ही रहे थे कि उनका पैर सहसा किसी के ऊपर पड़ गया। भय मिश्रित आवाज मे चीख पड़े, कौन है रे! यहां सीढ़ियों पर पड़ा है। गड़बड़ा कर घोंचू पण्डित उठ खड़े हुये। कानी आँख बिल्कुल सामने करके बोले, "हम हन लाला साहब! आज नाही जाय पायेन। हम कहेन काल्हि सबेरे जूड़े जूड़े चले जाबै। गर्मी ज्यादा लागि तौ एही तीर लुढ़कि रहेन। भगवान भला करें

लाला साहब केर। दुखियऊ दस रुपया दीहिन गंगा स्नान खातिर। बड़े धर्मात्मा हैं लाला साहब।

लाला गड़बड़ प्रसाद को इतना क्रोध आया कि पाते तो घोंचू पण्डित को कच्चा ही चबा जाते। परन्तु करते ही क्या, घोंचू पंडति कहते गये, "लाला साहब! जहां दस रुपिया दिहें हौ हुवां पांच और दै देउ। भगवान तुमार भला करै। नाहीं तौ काल्हिउ जाब मुश्किलै है। घर मां तौ चून चाउर रखि देई, भगवान तुम्हार भला करे"

लाला गड़बड़ प्रसाद का दूसरे दिन जाना तो अनिवार्य ही था। सोचा यह बला किसी प्रकार से दूर हो नहीं तो जाने कितने दिन तक जाना रुका रहेगा। मरता क्या न करता। लाला गड़बड़ प्रसाद को आखिर पांच रुपये देने ही पड़े।

दूसरे दिन लाला गड़बड़ प्रसाद चार बजे प्रातः इक्के से रवाना हो गये। बस्ती से प्रायः दो कोस निकल जाने पर सूर्य भगवान के दर्शन हुये। लाला गड़बड़ प्रसाद बहुत प्रसन्न चित चले जा रहे थे। देखा कि सामने सर पर गठरी लादे घोंचू पण्डित खड़े हैं। लाला जी को देखते ही घोंचू पण्डित ने हाथ उठाकर लाला गड़बड़प्रसाद को आशीर्वाद दिया। बोले- लाला साहब! जाय रहे हन गंगा-स्नान करै भगवान तुम्हारा भला करें। तुम्हारी बदौलत हम हूँ आज ई हड्डी गंगा जी मां बोर आई, नाहीं तौ हमारि ऐस तकदीर कहाँ रहै।

सत्य मानिये सम्पादक जी! लाला गड़बड़ प्रसाद गड़बड़ कर इक्के पर से कूद पड़े। इक्के वाला बीच में न आ जाता तो लाला गड़बड़ प्रसाद आज घोंचू पण्डित की मरम्मत किये बिना न छोड़ते

बेचारे गड़बड़ प्रसाद के जाने में उस दिन भी गड़बड़ पड़ ही गई।

किसी प्रकार से घोंचू पंडित ने लाला गड़बड़ प्रसाद को मना ही लिया। पड़ोसी ही ठहरे! लाला गड़बड़ प्रसाद घोंचू पंडित के साथ एक दिन अपने बाग में पहुँचे। आम इकट्ठे किये गये छोटे छोटे आम लाला गड़बड़ प्रसाद ने घोंचू पंडित को दिये और बड़े बड़े आमों को उनके घर में देने को कहा। घोंचू पंडित भला ऐसे सुअवसर को हाथ से कैसे जाने देते। पहुँचे लाला गड़बड़प्रसाद के घर और बोले। 'भाभी ये आम तो भैया ने भेजे हैं। कहा है इनको पानी में भिगो दो, नामी आम हैं आकर खायेंगे' कहने के साथ ही साथ छोटे आमों की पोटली भाभी के हाथों में दे दी भाभी ने आम देख कर कहा, "यह तो बहुत ही छोटे आम हैं। यह क्या अच्छे होंगे" घोंचू पंडित ने कहा 'कुछ तो अच्छाई होगी ही। तब तो इन्हें खास तौर से भेजा है' इतना कह कर घोंचू पंडित ने अपनी राह ली। भाभी ने उन आमों को एक पतीली में भिगो दिया। सायंकाल के समय लाला गड़बड़ प्रसाद जब भोजन करने बैठे तो आम मांगे भाभी ने आमों की पतीली सामने रखते हुए कहा 'यह तो बहुत ही छोटे छोटे आम हैं। क्या वास्तव में ये बड़े तारीफी हैं?'

"क्या कहना है इन आमों को! एक एक छांट कर तो भिजवाया था।" कहते-कहते लाला गड़बड़ प्रसाद ने जो पतीली में हाथ डाला तो दंग रह गये। बोले "अरे ये आम, कहाँ हैं जो मैंने घोंचू पंडित के हाथ भिजवाये थे?" भाभी ने त्योरी चढ़ा कर कहा "वे नहीं तो क्या मैं ने खुद बना लिये हैं ये आम?'

"क्या सचमुच घोंचू पण्डित यही आम दे गया है कहते कहते वे घोंचू पण्डित के घर की तरफ दौड़े। देखा कि घोंचू पण्डित

बड़े आनन्द से वही आम चूस रहे हैं। लाला गड़बड़ प्रसाद जल कर राख हो गये। गरज कर बोले--क्योंरे पण्डितवा! जो आम मैं ने भेजे थे, वे कहाँ हैं?" घोंचू पंडित ने आम दिखलाकर कहा "और यह क्या खा रहा हूँ। वही आम तो हैं पर आप क्या मुझसे अधिक खाने के शौकीन हैं? लाला गड़बड़ प्रसाद बड़े गर्म हुए। लेकिन करते क्या जो भी यह किस्सा सुनता वह लाला गड़बड़-प्रसाद को ही समझाने लगता। कहता "अजी जाने भी दीजिये। खाने पीने की चीजों में ऐसा ही होता रहता है।" लाला गड़बड़-प्रसाद अपना सा मुंह लिये घर लौट आये। सम्पादक जी! देखा आपने एक आँख का बल।

❀ ❀ ❀

कोई बारात आती है तो घोंचू पण्डित बिना बारातियों का स्वागत किये मानते ही नहीं कोई इधर मुँह सिकोड़ता है कोई उधर ईश्वर ही रक्षा करे! राम-राम सामने ही काना!! इत्यादि कानफुसकियों को सुनकर घोंचू पंडित जो मजा लेते हैं वह वही जानते हैं। घोंचू पण्डित कवि सम्मेलनों के बड़े ही प्रेमी हैं। कविता में वह आनन्द कहाँ, जो कवियों की झुंझलाहट में। घोंचू पंडित को यह ताड़ते देर नहीं लगती कि कौन कवि चिड़चिड़ा है गाड़ी स्टेशन पर रुकी नहीं कि घोंचू पण्डित उसी की ओर लपके। सामान कन्धों पर रक्खा और आगे आगे पथ प्रदर्शन के लिये चल दिये। कवि महाराज इस भयानक अपशकुन से मन ही मन झुँझला रहे हैं परन्तु सभ्यता के नाते कहें तो क्या कहें। कवियों के भोजन का समय है घोंचू पंडित वहाँ भी मौजूद! वहां भी उन्हीं कवि महाशय की खातिरदारी। कवि महाराज खाते क्या हैं खाने का उपक्रम मात्र है अपशकुन पर अपशकुन!!राम राम!!

कवि-सम्मेलन का समय है कवि लोग आ रहे हैं। 'अपने' कवि महाशय को देखते ही घोचू पण्डित उन्हीं की तरफ लपके। बाँह पकड़ कर बोले "बैठिये साहब! इधर आराम से बैठिये।" कवि महोदय की आँखें लाल हो गईं। समझ गये कुछ बुरा होनहार है। अतः यहां से खिसकना ही ठीक है कवि ठहरे सभ्यता से गिरी कोई बात कहने से रहे। अतः उठाया झोला। चलने ही वाले थे कि घोंचू पण्डित फिर आ धमके! क्यों साहब! कहां? आखिर कवि जी भी कहां तक बर्दाश्त कर सकते थे। बोले "साहब की ऐसी तैसी। जाते हैं जहन्नुम में! आकर पछताये! 'तीन कोस पर मिले जो काना तुरतै लौटै वहै सयाना।' बार बार तुम्ही सामने पड़ रहे हो। क्या और सब मर गये, जो तुम्ही दौड़ दौड़ कर मेरे पास आते हो? घोंचू पण्डित ने सिर्फ इतना ही कहा कि "यदि कानी आंख से ही इतनी नफरत थी तो पहले ही बता देते। आपको इतना कष्ट क्यों होता?"

सम्पादक जी! घोंचू पण्डित का यह थोड़ा ही सा परिचय है आशा है इस समय आप इतने से ही संतोष कर लेंगे। होली के हुरदंग में घोंचू पण्डित आज बौखलाये से घूम रहे हैं सब होलिका माता तथा भक्त प्रहलाद की जय जय बोल रहे हैं तो आपके घोंचू पण्डित श्री शुक्राचार्य महाराज को तुमुल निनाद से जय जय कार कर रहे हैं। शेष सब चकाचक है।

आपका वही—
पुराना हथछुट
मरकट मार्केट, सिवपिट सिटी

८ मार्च सन् १९५२

बारहवां चिट्ठा

श्री भैया सम्पादक जी !

जय कलदम भगवान की।

मस्तराम जी की समझ में आज यह नहीं आ रहा है कि होली के इस पवित्र दिन पर आपका अभिवादन क्या कह कर किया जाय। क्या 'जयहिन्द' ? जी नहीं ऐसा न हो कि आप कोई जन-संघी हों जो मस्तराम जी का घेटुवा ही दबा दें ! तो फिर नमस्ते। बाप रे बाप ! कहीं आप सनातन धर्मी तो नहीं हैं जो मस्तराम जी का कान पकड़ कर हिन्दू समाज से बाहर निकाल कर ही दम लें। अच्छा 'प्रणाम ! या नमस्कार ही सही। नहीं नहीं यह तो बिल्कुल ही ठीक नहीं है। इस पर तो आप फौरन ही मस्तराम जी को घोर सम्प्रदायवादी कह डालेंगे। मस्तराम जी कच्चा भाटा खाने वाले थोड़े ही हैं। अतः प्रणाम या नमस्कार को तो दूर ही से नमस्कार। तो फिर क्या 'आदाबर्ज' 'तस्लीम' या 'सलाम' ? जी नहीं। इनका नाम भी न लीजिये। कोई राम-राज्य परिषदीय सुन पायेगा तो खैरियत नहीं। अच्छा-मातृ भूमि की जय ही सही। परन्तु ऐसा तो नहीं है कि आप पश्चिमीय सभ्यता के उपासक हों, जहाँ जन्म भूमि को 'मातृ-भूमि नहीं बल्कि पितृ-भूमि कहा जाता है। अतः लिंग भेद का झगड़ा खड़ा करदें अच्छा तो 'वन्दे मातरम्'। परन्तु इसमें तो प्रान्तीयता की बू दूर से आ रही है। अतः मस्तराम जी यह कैसे समझें कि आप इसे स्वीकार ही कर लेंगे। अच्छा 'राम राम या जयरामजी की' ? कैसा रहेगा ? आजी रहने भी दीजिये। 'अप-टू-डेट जेन्टिलमैन' लोग सुन पायेंगे तो मस्तराम जी को पूर्ण गँवार' की उपाधि दिये बिना न छोड़ेंगे। 'बन्दगी-बन्दगी' में भी यार लोग कुछ न कुछ गन्दगी निकाल ही लेंगे। अतः मस्तराम

जी ने 'जय कलदम भगवान की' ही कहकर आपको अभिवादन करना अच्छा समझा। मानें या न मानें 'कलदम् भगवान' की याद आते ही आपका मन बांसों उछलने लगता होगा।

सम्पादक जी! संसार भले ही जपा करे-

भज गोविन्दम् भज गोविन्दम्,
गोविन्दम् भज मूढ़मते!

परन्तु मस्तराम जी तो पूरे ताल-स्वर से—

भज कलदारम् भज कलदारम्,
कलदारम् भज मूढ़मते!

इस महामंत्र का अहर्निशि उच्चारण किया करते हैं। इस महामंत्र के आगे भला कोई मंत्र ठहर भी सकेगा बाबा तुलसी दास जी ने लिखा है—

उमा! दारु योषित की नाईं,
सबहिं नचावत राम गुसाईं।

परन्तु यह तो कदाचित् सोलहवीं या सत्रहवीं शताब्दी की बात है। यदि बाबा जी आज बीसवीं शताब्दी में होते तो अवश्य ही इसमें संशोधन करते और साफ साफ चिल्ला कर कहते—

उमा! दारु योषित की नाईं,
सबहिं नचावत दाम गोसाईं।

अतः मस्तराम जी ने यदि आज नव-सम्वत् के शुभागमन के समय 'कलदार भगवान' की जय कही है, वह मस्तराम जी की राय-शुमारी में बिल्कुल ठीक है। आशा है आप भी इस अभिवादन से एकदम प्रसन्न हो उठे होंगे।

हां तो आज होली है आज यदि आप चुग्घू पंडित को देख लें तो 'वल्लाह' मारे प्रसन्नता के आप फूले न समायें। भंग भगवती की कृपा से आप के रक्त वर्ण नेत्र देखते ही ज्ञात होता है कि मानों आप यमराज के सगे भाई ही हैं। होली खेलने में आप वह ऊधम-चौकड़ी मचाते हैं कि तौबा तौबा मानो आसमान उठाकर ही सर पर रख लेंगे। किसी की माँ बहिन को देखते ही अररकवीर कहकर तथा बुरी बुरी गालियां बकते हुये उस बेचारी की तरफ ऐसी बुरी तरह से झपटते हैं कि पूछिये मत बेचारी लज्जा से गड़ जाती है। परन्तु चुग्घू पंडित कुत्ते की तरह खीसें निकालने तथा 'ही ही, ही ही' करने में ही अपना गौरव समझते हैं। क्या मजाल कि कोई भद्र पुरुष उधर से निकल जाय और चुग्घू पण्डित बिना नापदान का कीचड़ उस पर डाले रह जांय। सब अबीर-गुलाब का टीका मस्तक पर लगाते हैं तो आप के चुग्घू पण्डित मिट्टी के तेल में सनी हुई कालिख मुंह पर पोतने में ही बड़ा आनन्द लेते हैं। इस कालिख के पोतने में चुग्घू पण्डित ऐसी धींगा-मुश्ती करते हैं कि बाप रे बाप! आपकी आँख या नाक उस समय सही सलामत बच जाय तो समझिये आप बड़े ही भाग्य शाली हैं। नशे में चुग्घू पण्डित ऐसे क्रूर हो जाते हैं कि हजरत को न तो धोती की सुध रह जाती है और न लंगोटी की। पूर्ण दानव ही समझिये। चुग्घू पण्डित का कहना है कि आज भी यदि कोई मनुष्य मनुष्य ही बना रहा, न दानव ही बना और न पशु ही- तो वह हिन्दू कहलाने का अधिकारी नहीं। वह तो हिन्दू-जाति का पूर्ण शत्रु है, वह हिन्दू जाति को खतरे में डाल रहा है। वह हिन्दू ही काहे का जो आज भी-होली के दिन भी-गांजा चरस अफीम इत्यादि का थोड़ा बहुत आनन्द न ले। कुछ न सही, तो थोड़ी सी वारुणी का तो स्वाद लेना ही चाहिये। अजी वह तो मां दुर्गा का महाप्रसाद है। जिस अभागे ने इस 'महाप्रसाद' को प्राप्त

न किया, उसको जन्म-जन्मांतर तक नरक कुँड में सड़ना पड़ेगा ।

चुग्घू पण्डित कांगरेस सरकार के घोर विरोधी हैं । कांग्रेस शासन को उलटने के लिये बेचारे ने जमीन आसमान के कुलाबे एक कर दिये । परन्तु हायरे भाग्य ! फिर वही काँगेस का बहुमत । फिर वही काँगरेस मंत्रिमन्डल !! बेचारे चुग्घू पण्डित अब कहां डूब मरे जाकर ! किस प्रकार से हिन्दू धर्म की रक्षा करें । नथुनों में सुरती खोंसते-खोंसते नथुने बेचारे 'हावड़ा पुल' हो गये अकछी आकछी' करते करते सारी रात बीत जाती है, परन्तु बेचारे चुग्घू पंडित की आंखों में नींद का पता नहीं । हाय रे ! एक दिन वह था जब होली के दिन कोई भी स्त्री घर से बाहर निकलने का साहस तक नहीं कर सकती थी । रास्ते रास्ते होरिहारों के हुरदङ्ग तथा 'फागुन माँ बाबा देवर लागैं' के आनन्द में हिन्दू जाति मस्त हो जाती थी और आज ? कुछ न पूछिये । जहन्नुम में जाय यह हुक्का-मत कुत्तों की मौत मरें ये सुधारक, जो हिन्दू धर्म का नाश करने पर ही तुले हुये हैं । देखिये तो--कहते हैं कबीर न गावो । किसी की बहू-बेटी को देखकर उससे हँसी ठट्ठा करना तो अलग रहा-उल्टे आखें नीचे कर लो । उन्हें अपनी ही माँ बहन समझो । किसी के ऊपर मोरी का कीचड़ तक न उछालो ! जरा इन दुम कटों की अक्ल तो देखिये ! यदि यही सब न किया जाय तो फिर वह होली ही काहे की । अजी पराई स्त्रियों को रोज मां-बहन समझा ही जाता है यदि एक दिन न भी समझा तो इससे क्या पृथ्वी रसातल थोड़े ही चली जायगी हायरे ! कोई न्याय करने वाला नहीं है । क्या एक दिन भी मनुष्य बन्दर न बने । अरे अक्ल के दुश्मनों, तुम तो पढ़े लिखे हो । बाबा 'डारविन' को जानते ही होंगे । उन्होंने न जाने कितने कष्ट सह कर तथा धन फूंक कर यह खोज की थी । कि बन्दर ही तुम्हारा पूर्वज है । तो फिर क्या एक दिन भी अपने

पूर्वज का सम्मान नहीं करोगे। चुग्घू पंडित का कहना है कि होली के दिन जहाँ होलिका दहन इत्यादि सभी कुछ होता है वहां प्रत्येक हिन्दू को एक एक दुम भी लगानी चाहिये ताकि 'ललमुंहें तथा कलमुंहें' दोनों प्रकार के पूर्वजों की आत्मायें स्वर्ग में प्रसन्न होजायँ और वे दुम उठा उठा कर, ऐसा आशीर्वाद दें जिससे हम लोग अपनी वानरीय संस्कृति तथा सभ्यता को सुरक्षित तो रख सकें। और पूछिये सम्पादक जी! तो बेचारे चुग्घू पंडित अपने इस प्राचीन गौरव की रक्षा ही के लिये आज बन्दर बने घूम रहे हैं केवल दुम ही नहीं है। आपको चुग्घू पंडित का अनुग्रहीत होना चाहिए जिनकी बदौलत भारत की प्राचीन सभ्यता आज भी सुरक्षित है।

यह धर्म ही का तेज प्रताप है जिसकी बदौलत आज होली के दिन चुग्घू पंडित में बिजली की सी शक्ति भर जाती है। वैसे तो चुग्घू पंडित का स्थूल शरीर तथा नगाड़ा नुमा पेट दो कदम भी रखने के लिए हठ करने लगता है, परन्तु आज 'चल बे मटके ठामक ठूं' का साक्षात् रूप बन जाते हैं। और गाने? उनका आनन्द तो प्रत्यक्ष दर्शी ही ले सकता है वह कहने की चीज नहीं। 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी'। गला ऐसा है कि बोले नहीं कि बेचारे पक्षी अपनी अपनी जान लेकर भागे। उस पर तुर्रा यह कि गलेबाजी भी। 'गोरी ऐहैं कि नाहीं होरी माँ' कमर पर भी हाथ रखते हैं मटकते भी हैं नेत्रों से कनखियां भी करते हैं। हाव भाव इत्यादि सभी कुछ। सम्पादक जी! चुग्घू पंडित के इन सुकृत्यों का आप को भी समर्थन करना चाहिए चुग्घू पंडित अपनी ढलती हुई अवस्था में जो कुछ कर रहे हैं वह तो आखिर हिन्दू धर्म के रक्षार्थ हीं। बतलाइए भला यदि चुग्घू पंडित भी होली के दिन यह भटिवारी पन तथा नग्न नृत्य न दिखलायें तो भला हिन्दू धर्म का कहाँ नाम लेने वाला कोई रह भी जायगा? शिखा-सूत्रधारी कहीं

दिखलाई भी पड़ेगा ?

जो लोग कहते हैं कि आज का दिन अत्यन्त पवित्र दिन है। आज के दिन दुष्ट होलिका जल मरी थी और भक्त प्रह्लाद का अग्नि की भयंकर लपटें भी कुछ न बिगाड़ सकीं, अतः आज तो घर-घर भजन कीर्तन होना चाहिए। अन्न दान होना चाहिए। भूखों को भोजन कराना चाहिए—इत्यादि इत्यादि। उनकी बुद्धि पर चुग्घू पंडित को बड़ा तरस आता है। चुग्घू पंडित उन्हें हिन्दू कहने में भी अपना अपमान समझते हैं। नया संवत आरम्भ होने वाला है, ऋतु राज की सवारी भी देखिए सामने है, आम-मंजरी भी झरोखे से झांक रही हैं, कृषि प्रधान भारत का अन्न पक कर तैयार है, किसान आज फूला नहीं समा रहा है, प्रकृति ने बेल बूटेदार साड़ी पहन ली है, भारतीयों में एक नवीन जीवन सा आ गया है अतः ऐसे समय पर हवन-यज्ञ इत्यादि होना चाहिये। किसी भी हिन्दू भाई के हृदय में किसी प्रकार का मैल शेष न रह जाये प्रेम पूर्वक परस्पर गले से मिलना चाहिये, भारत माता की जय जय कार से वायु मंडल भरा होना चाहिये तथा छूत अछूत और छोटे बड़े में कोई अन्तर न होना चाहिए। परन्तु चुग्घू पण्डित का कहना है कि जिनके दिमाग इतने खराब हो गये हैं और जो होली के दिन मनुष्य ही बने रहना चाहते हैं उन्हें शीघ्र ही बरेली या आगरे का टिकट कटा लेना चाहिये, नहीं तो देश का सर्वनाश दूर नहीं है। न हुई आज चुग्घू पण्डित की सरकार जो इन सुधारकों के मस्तिष्क की मरम्मत कर देती।

शेष सब आनन्द ही आनन्द है।

आपका वही—

रायबहादुर ठेंगा सिंह,

पेठा सिंह रोड,

घुमक्कड़ शहर।

तेरहवाँ चिट्ठा

अजी सम्पादक जी महाराज !

ताकधिनाधिन !

जी हां 'ताकधिनाधिन' ! खफा न हों महाराज । मस्तराम जी की यह ताकधिनाधिन वाली बात यदि बत्तीसों अधन्ने ठीक नहीं तो मस्तराम जी को जो चाहियेगा दण्ड दे दीजियेगा । अच्छा तो चलिये पहले शिक्षक महोदय के घर से ही लगा लगाइये । जरा देखिये तो सामने के कमरे में क्या हो रहा है ? सूटेड-बूटेड चश्मा-धारी ये साहब हैं कौन ? क्या कर रहे हैं ? अच्छा एक हाथ में खड़िया का टुकड़ा तथा एक पुस्तक भी है, यह क्या ? कभी श्याम पट पर दौड़ कर जाते हैं, कभी मेज पर हाथ पटकते हैं, यह हाव-भाव कैसा । वह देखिये उधर एक लड़के ने दूसरे लड़के के सर पर चुपके से चपत रसीद की । दौड़े न, उधर भी आँखें लाल करके । वह तो साहब बड़ी जल्दी जल्दी अपना पार्ट अदा कर रहे हैं । बीच बीच में सूखी हँसी भी आ जाती है । बड़े गौर से लड़के आपका मुँह देख रहे हैं । आखिर बात क्या है ? क्षण में इधर क्षण में उधर । कभी क्रुद्ध, कभी शान्त । रौद्र रूप भी कभी २ धारण कर लेते हैं । नव रसों का न्यूनाधिक आनन्द आ रहा है न । है न पूरा ताकधिनाधिन ।

लगे हाथ जरा महात्मा जी के भी दर्शन करते चलिये । परन्तु यह क्या ! यहां भी वही 'ताकधिनाधिन' । उपदेश भी चल रहा है साथ ही दृष्टि शिष्यों द्वारा लाई गई सामग्री पर है । आगन्तुक का स्वागत सत्कार भी हाथ उठा उठा कर किये जा रहे हैं । हाँ ठीक कहा आपने । जो जितनी ही अधिक भेंट देता है, उसी के

ऊपर महात्मा जी की कृपा दृष्टि भी अधिक जान पड़ती है। क्या कहा, महात्मा जी जेठ की इस कड़ी गर्मी में पंचाग्नि ताप रहे हैं? हाँ ठीक तो है। बिना अपना पार्ट पूरा किये हुये कोई भकुहा, मानता भी तो नहीं है। आप रटा करिये–

माला लिये कर में हौ बृथा, शठ! होत कहा यदि मूड़ मुड़ायो।
धारे फिरौ रंगे वस्त्र कहा, किहि हेतु जटान को जाल बनायो॥
ध्यान कियो हरि कौ न कबौं, भ्रम जालन में परि दोस बितायो।
ढोंग सो श्याम मिले हैं कहां, किहि कारन चन्दन माथ लगायो॥

इस का उत्तर यदि महात्मा जी यह कह कर देदें तब तो सम्भवतः आप चुप हो ही जायेंगेः—

वेद पढ़े छहौ शास्त्र गुनें, बसि काशी अनेकन वर्ष बितायो।
भूलि न पाप कियो कबहूँ, अरु बैठि इकन्त मैं श्रीगुन गायो॥
चाल चली सदा सूधी तबो, जग में सदा हाय निरादर पायो।
ढोंग बिना कोऊ पूछै नहीं, यहि कारन चन्दन माथ लगायो॥

कहिये मिल गया टका सा जवाब। अब जरा इधर भी दृष्टि डालिये। वह कौन साहब हैं जो कान में 'आला' लगा लगा कर रोगियों को देख रहे हैं? डाक्टर साहब हैं न। रोगी पर ध्यान कम है 'फीस' के रुपयों पर अधिक। फीस हाथ में आते ही दूसरी तरफ दौड़े। अब यही रोगी मानो इनका सर्वस्व है। यह क्या अब तीसरे पर जा धमके। 'जस देवता तस चाहिय पूजा'। जो जितना ही अधिक देता है, उससे उतनी ही अधिक सहानुभूति भी। कभी इधर कभी उधर। पूरा 'ताकधिनाधिन हो रहा है न'।

आजी आप तो अभी ही से ऊबने लगे। जरा साहब के आफिस का भी तो मुलाहिजा लीजिये। उधर देखिये शायद 'क्लर्क' से कुछ गलती हो गई है। बेचारे के मुंह पर हवाइयाँ उड़ रही हैं।

वह देखिये 'साहब' आ धमका। कैसा दांत पीस रहा है। मानो 'क्लर्क' को अपने तीक्ष्ण दांतों से आज चबा ही डालेगा। साहब अपने से बाहर हो रहा है। देखिये तो कैसा पैर पटक रहा है। आज 'क्लर्क' महोदय को क्या खाकर ही दम लेगा? जाने वह लक्ष्मण की तरह क्यों नहीं कह देता—

यहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं। जो तर्जनी देखि मर जाहीं॥

अरे उधर देखिये। वह 'गोरा साहब' उस चपरासी के कान ही उखाड़े डाल रहा है, चपरासी की खामोशी तथा विवसता पर आप कहां तक रंज करेंगे। ये तो सब अपना अपना पार्ट अदा कर रहे हैं! भैया सभी जगह है न "तार्कधिनाधिन"।

घबड़ाइये नहीं! वह देखिये सामने बाजार है। न हो तो उधर से ही निकल चलिये। बाप रे बाप! यहां किसको इतना अवकाश है, जो किसी की कोई एक बात भी सुने। ओहो कान के पर्दे फटे जा रहे हैं। जिसका जितना ही छोटा सौदा है, वह उतना ही गला फाड़े डाल रहा है। मानो होड़ लग रही है। किसी प्रकार से ग्राहक फँस जाय। झूठ-सच किस चिड़िया का नाम है जी? जरा ऊंची दूकानों की तरफ दृष्टि डालिये। बाप रे बाप ये पेट हैं या मटके। इनकी मीठी जबान में विष भरा है विष, जरा सम्हले रहियेगा। सामने देखिये, वह सेठ उस ग्राहक को कैसा फांस रहा है। हां मकड़ी ने जाला तैयार कर लिया है, मक्खी फँसने ही वाली है। वह देखिये होने लगा, 'रामा-दुइया, लाव रुपैया'। बजाज का 'गज' कैसे झटाके से चल रहा है। गज रखने की सफाई तो देखिये। हर गज में आध अंगुल कपड़ा इधर ही रह जाता है न। अजी ग्राहकों का मजा तो आपने देखा ही नहीं कितनी जल्दी जल्दी सब दूकानें छानें डाल रहे हैं। 'टेट' में शायद

दो ही रुपये हैं, परन्तु मालूल होता है कि सारा बाजार आप आज खरीद डालेंगे। 'ताकधिनाधिन' नहीं तो यह सब और है क्या।

क्या कहा ? समझ गये आप अब ताकधिनाधिन की पहेली ? जी नहीं। जरा सामने न्यायालय है, उसका भी तो मुलाहिजा कर लीजिये। वह तो न्याय का घर है। वहाँ भला अन्याय कैसे हो सकता है ? वह देखिये आपको देखते ही वकील का मुन्शी दौड़ा आ रहा है। नहीं नहीं देखिये अब तो स्वयं वकील साहब भी आ रहे हैं। मुवक्किल कहीं दूसरी जगह न फँस जाय। देखिए कैसी सावधानी से जाल बनाए गए हैं। वह देखिए उधर सीधे सादे सच्चे आदमी को झूठ का कैसा सुन्दर पाठ पढ़ाया जा रहा है। अजी राम भजिए, यहां कौन जानता है, 'ईश्वर' किस चिड़िया का नाम है। कहा होगा किसी मूर्ख ने 'सत्यमेव सदा विजयते'। यहां तो 'असत्यमेव सदा विजयते' का मंत्र सदा रटा जाता है। यह न्यायालय है न, इससे। प्रार्थना-पत्र-लेखक से लगाकर वकील बैरिस्टर सभी का संसार यहाँ और है। अजी परमात्मा कहीं न्यायालय के आस पास फटक भी सकता है।

हाँ तो अब आप 'इजलास' के अन्दर भी झांक कर देखना चाहते हैं। जरा सावधान रहिएगा। वहां के कर्मचारियों के सौदे में आप बाधक सिद्ध होंगे। वह देखिए। क्लर्क एक हाथ से तो मेज पर लिख रहा है और दूसरा हाथ मेज के नीचे है। लीजिये आपने देखा ही नहीं, उस देहाती ने कितनी सफाई से कुछ मेज के नीचे वाले हाथ पर रख दिया। चलिए देहाती तो अमर हो गया वह तो बात करते ही भवसागर के पार हो गया।

उधर देखिये उन हजरत के भी दर्शन कर लीजिये। आप का पेशा झूठी गवाहियां देना है। जिधर लक्ष्मी है उधर ही इन महा-

शय की गवाही भी। बड़े बड़े न्यायाधीशों को चरका दे देने की शक्ति इन हजरत में है। न्यायाधीश न्याय करे भी तो कैसे ? ये हजरत तो सभी जगह टाँग अड़ाए हुए पड़े हैं साहब।

हाँ ! तो अब तो आप न कहियेगा कि मस्तराम जी का 'ताकधिनाधिन' का कहना गलत है। अजी मन्दिरों तीर्थस्थानों तथा सभा समाजों में सभी जगह वही 'ताकधिनाधिन'। जो जितना ही अधिक ताकधिनाधिन करता है, उलूक वाहिनी श्री लक्ष्मी जी उसपर उतना ही अधिक रीझती भी हैं। साधु-संत, फकीर, मंगता, सेठ-साहूकार, हकीम, वैद्य, स्त्री, पुरुष, चोर, लबार, बड़ा, छोटा बूढ़ा, बच्चा, जवान, पशु-पक्षी, नौकर, स्वतन्त्र, परतन्त्र, ऊपर-नीचे दाहिने-बायें, आकाश, पाताल जहां भी जोभी है- प्रत्येक "ताक-धिनाधिन" में मस्त है।

शेष चारो ओर मौज ही मौज है।

आशा है आप भी कागज कलम लिए हुए ताकधिनाधिन ही कर रहे होंगे।

आपका वही—
मुँहफट,
बेखटक गली,
सरपट सिटी।

चौदहवाँ चिट्ठा

अजी सम्पादक जी महाराज !

जय कपीश्वर महाराज की।

वर्तमान समय के कपि—नहीं राम-राम-कवि दो श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं। प्रथम श्रेणी में तो वे कवि हैं, जिनका ध्येय ठोस साहित्य का निर्माण करना है, वे प्रायः जितनी भी कविताएँ लिखते हैं, सब 'स्वान्तः सुखाय' के ही सिद्धान्त पर लिखते हैं, यह बात दूसरी है कि किसी के विशेषाग्रह अथवा लोकोपकार के विचार से वे अपनी रचनाओं को पत्र-पत्रिकाओं अथवा किसी पुस्तक के रूप में प्रकाशित करा दें। वे 'हुवा-हुवा' नहीं जी 'वाह-वाह' के भी भूखे नहीं होते हैं। दूसरी श्रेणी में वे 'कपि-गण' हैं, जिनकी उपमा बरसाती मेढकों से दी जा सकती है। कवि-सम्मेलनों की बाढ़ में ये लोग खूब उछल-कूद मचाते हैं। कवि सम्मेलनों का वर्तमान समय में क्या मूल्य रह गया है, इसको आप भी जानते ही होंगे। मस्तराम जी को इधर छोटे-बड़े कई 'कपि-सम्मेलनों में सम्मिलित होने का सौभाग्य-नहीं जी दुर्भाग्य प्राप्त हुवा है। 'कवि-सम्मेलनी कवियों' की अदा यदि आप देखें तो यही कहेंगे 'सुभान अल्लाह'। प्रत्येक कवि अपनी ही ऐंठ में मस्त रहता है। अपनी ओर से किसी परिचित अथवा अपरिचित कवि का अभिवादन करना तो वह अपनी शान के खिलाफ समझता है। प्रत्येक कवि को चाहे वह 'कवि-सम्राट' ही क्यों न हो, वह अपने से तुच्छ समझता है। फिर भला आप ही बतलाइये, वह उससे लपक कर कैसे मिलें ? अजी गनीमत कहिये कि वह अपनी विशाल दुम घुमा कर उनके मुँह पर तड़ाक से

रसीद ही नहीं कर देता है । सम्पादक जी ! आप चाहे जब देख लें 'कपि-सम्मेलन' में बैठा हुना कोई भी 'कपि' अपने को सर्व श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर अथवा मैथिली शरण गुप्त से कम दर्जे का नहीं समझता ।

'वाह-वाह' के तो वे वैसे ही इच्छुक रहते हैं, जैसे भ्रष्टाचारी कन्ट्रोल के । इस 'वाह-वाह' की प्राप्ति के लिये बड़ी-बड़ी चाल-बाजियों तथा कलाबाजियों मे वे काम लेते हैं । इन कवि नामधारी जीवों की यदि सब कवितायें (?) एकत्रित की जायँ, तो शायद ही वे दहाई तक पहुँचें, अतएव इन महाशय का नाम पाते ही इनकी टोली वाले उन्हीं कविताओं में से किसी एक की फ़र्माइश करने लगते हैं । कविता पढ़ी बाद में जाती है और 'वाह-वाह' की धूम पहले ही से मच जाती है । मस्तराम जी कितने ही ऐसे नामधारी कवियों को जानते हैं जो प्रायः प्रत्येक छोटे-बड़े 'कपि सम्मेलन' में खौखिया-खौखिया कर सम्मिलित होते हैं, और वर्षों से वही 'बाबा आदम' वाली कवितायें पढ़ते चले आ रहे हैं । ऐसी दशा में यह अनुमान करना कि वह हजरत कवि हैं भी या नहीं, जरा टेढ़ी खीर है । प्राचीन समय में समस्यायें इसी उद्देश्य से दी जाती थीं, जिस में कवियों की वास्तविक प्रतिभा का पता लग जाय । परन्तु आज कल इन रंगे सियारों के भाग्य से उक्त प्रथा का भी लोप सा हो रहा है ।

हां तो आज कल 'वाहवाह' की प्राप्ति के लिये और अपना नाम उछालने के लिये बहुत सी चालबाजियां करनी पड़ती हैं । आश्चर्य तो इस बातका है कि हर मौके पर इनलोगों का 'प्रोपैगैंडा' सफल रहता है । यहाँ तक कि बड़े-बड़े आदमी एवं नामी विद्वान भी इस 'प्रोपैगैंडा' के जाल में फँस जाते हैं ।

कवि-सम्मेलन में जो महाशय कवियों को पढ़ने के लिये 'रंग-मंच' पर बुलाते हैं, और प्रत्येक कवि का परिचय जनता से कराते हैं— ये उस समय अपने को 'अल्लाह मियां' से भी बढ़कर समझते हैं। उनकी शान और ऐंठ निराली होती है। वे अपने को 'नोबुल प्राइज़' पाने का पूर्ण अधिकारी समझते हैं, परन्तु वे भी 'कवि-सम्मेलनी-कवियों' के षड्यन्त्र में फँस कर फड़फड़ाने ही लगते हैं। क्या मजाल कि परिचय देते समय ये लोग इन 'दुमधारी' कवियों के पहले 'सुप्रसिद्ध कवि' या 'हिन्दी-संसार के ख्यात नामा कवि' इत्यादि विशेषण न लगावें।

हाँ एक बात तो मस्तराम जी भूल ही गये। अपनी कविता सुनाने के प्रथम यह बने हुये कवि एक सत्रह-अठारह वर्ष के लड़के से अवश्य ही एक आध छन्द पढ़वा देंगे जो अत्यन्त सुरीले स्वर में हाव-भाव बतला कर इस आशय की कोई कविता पढ़ेगा जिससे श्रोता लोगों पर पहले ही से 'रोब' जम जाय और वे यह समझलें कि अबकी जो महाशय पढ़ेंगे, वह कोरे कवि ही नहीं 'उस्ताद' भी हैं। 'स्टेज' पर कविता-पाठ करने के लिये जाते समय ये कविनामधारी जीव रुस्तम नहीं तो रुस्तम के ताऊ के पुत्र तो अवश्य ही मालूम होते हैं। पृथ्वी में कितनी सहन-शक्ति है, इसका अन्दाजा इसी समय लगाया जा सकता है, जब यह हज़रत ऐंठ-ऐंठ कर पृथ्वी के वक्षस्थल पर दौड़ते हुये चलते हैं। कविता-पाठ करते समय यदि इनको कोई फिल्म-सुन्दरी देख ले, तो बिना इनका चरणामृत लिये चली जाय, ऐसा कदापि सम्भव नहीं। नाज नखरों में, कटाक्ष में, हाव-भाव दिखाने में चावड़ी बाजार (दिल्ली) की सुन्दरियाँ बीस वर्ष तक इनके तलवे सहलायेंगी।

हाँ इस स्थल पर एक बात और बता देना आवश्यक है। मित्र-मंडली में यह पहले ही से निश्चित कर लिया जाता है कि कितने

पदक इन महाशय को दिये जायँगे। यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि पदक हाथ में पहुँच ही जायें, परन्तु कविता पाठ के बाद इस बात का शोर अवश्य हो उठे कि अमुक महाशय ने.....जी की कविता पर मुग्ध हो कर एक स्वर्ण-पदक तथा अमुक महाशय इतने रुपये का पुरस्कार और एक रौप्य-पदक.....शीर्षक कविता पर प्रदान किया है। इस प्रकार के पदक तथा पुरस्कार देने वाले सभी समझते हैं कि देना-लेना तो कुछ है ही नहीं, मुफ्त में जो नाम, यश तथा धन्यवाद के ढेर मिल रहे हैं, वे क्यों छोड़े जांय!

आजकल कवि सम्मेलनों में 'आशुकवि' कहलाने वाले और बाजारू कवितायें पढ़ने वाले ही कवि सफल रहते हैं। कारण, आशु कवि इधर उधर के कुछ सार्थक और कुछ निरर्थक शब्दों को जोड़ जोड़ कर अन्त में कोई ऐसी बात रख देते हैं, जिससे सुनने वाले हँस पड़ें। श्लीलता और अश्लीलता से उन्हें प्रयोजन नहीं और न वे इतनी योग्यता ही रखते हैं जो इन बातों को समझ सकें। आश्चर्य होता है कि ऐसे ऊटपटांग छन्दों पर वह करतल-ध्वनि होती है कि आसमान हिल उठता है। इस बात को न 'आशु-कवि' ही, समझें और न श्रोतागण ही कि कविता कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे कातें और ले दौड़ें। अजी जिन कविताओं की एक-एक पंक्ति कभी-कभी महीनों में अपनी इच्छानुकूल नहीं बन पाती, वही कविताएं कोई जबर्दस्ती बना कर सुना दे, यह कैसे हो सकता है। मस्तराम जी तो दिन रात भगवान से यही मनाते हैं कि 'भगवान ऐसी आशु-कविताएं यदि आज ही नकटी करके निकाल दी जांय तो तेरी बड़ी कृपा हो।' आशु कविता तो भैया लिखकर भी की जा सकती है फिर यह सांपों के मंत्रों की सी कविताएं रचने की जरूरत ही क्या है। कम से कम यह लाभ तो होगा ही कि छन्द इतने ऊट-पटाँग तथा अर्थ हीन न होंगे जिसने जबानी बना कर

पढ़े जाने वाले छन्द और आशु-कवि महाशय भी विज्ञ लोगों की दृष्टि में इतने उपहासास्पद नहीं होंगे, परन्तु यह तो तभी होगा जब हिन्दी के दिन सुधरेंगे।

कवि-सम्मेलनों में बाजारू, अश्लील तथा बे सिर-पैर के ऊट-पटाँग छन्द बहुत पसन्द किये जाते हैं। इसका कारण श्रोताओं की अज्ञानता है। कविता समझने के लिये विद्वता की आवश्यकता है। विद्या के अभाव ही से आज कवि-सम्मेलनों में 'थर्ड क्लास' के कवियों की वाह-वाह और सुकवियों का अपमान हो रहा है। इसके अतिरिक्त 'पार्टी-बन्दी' भी कोढ़ में खाज का काम कर रही है। मस्तराम जी ने जितने भी कवि सम्मेलन देखे, प्रायः सभी में 'दलबन्दी' का बाजार गर्म पाया। एक पार्टी वाला दूसरी पार्टी वाले कवि को अपमानित करने की यथाशक्ति कोशिश अवश्य ही करेगा। उसके पीछे तालियां बजाई जायँगी, आवाजें कसी जायँगी तथा 'नहीं सुनेंगे, नहीं सुनेंगे' के नारे लगाए जायँगे। अधिकांश कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में होने वाले कवि-सम्मेलनों में तो यह नग्न-नृत्य और भी भीषण रूप धारण कर लेता है। अपने घर बुला कर कवियों का वहाँ जैसा अपमान किया जाता है तथा शिक्षित कहलाने वाले विद्यार्थी, जिस गुण्डे-पन का परिचय देते हैं वह वास्तव में बड़े खेद और कलंक की बात है। खैर कहिये सम्पादक जी! ऐसे विद्यार्थी कवि महाशयों के कान, नाक तथा चुटैया नहीं काट लेते यही क्या कम है! क्या कहा भाई उर्दू मुशायरों में यह बातें नहीं होतीं? अजी वे लोग हिन्दी वालों का सामना कर ही कैसे सकते हैं। यहां तो जन्म जात कवि पैदा होते हैं और पेट से बाहर निकलते बाद में हैं और सभी विद्याएँ भंगाघुटने से घोट कर पी पहले लेते हैं। उर्दू वाले बिना गुरू की आज्ञा लिये हुये मुशायरों में

एक शब्द भी नहीं बोलते और न कुछ पढ़ते ही हैं। और यहां क़लम पकड़ी नहीं कि खुद ही गुरू हो गये। बल्कि गुरू गुरू ही रहे, चेला शकर हो गये। साथ ही कवियों को भी शायद अपमानित होने में ही विशेष आनन्द आता है, तभी तो कवि सम्मेलन में बुलाये जांय चाहे न बुलाये जांय, 'सेतुआ पिसान' बांधे जबर्दस्ती घुसे चले जा रहे हैं। न बैठने का सलीका न किसी से बात करने का सहूर। जहां पाये धम से बैठ गये। बोले तो मालूम हुआ कि बादल गरज रहा है, बिजली फट ही पड़ेगी।

बहुत से कवियों को कविताएँ सुनाने की भी बड़ी लत होती है। कोई कोई हजरत तो बिना सभापति की आज्ञा ही कविताएँ पढ़ने लगते हैं। जनता तो 'रहने दीजिये, रहने दीजिये' चिल्ला रही है, और आप से रहा ही नहीं जाता है। आप बेशर्मी का शरीर धारण किये हुये पोथे के पोथे उलटते ही चले जा रहे हैं यह बात नहीं है कि ऐसा केवल साधारण ही कवि करते हों वरन् बड़े बड़े नामी कवि भी ऐसा करते हुये देखे गये हैं, कवि महाशय को तो चाहिये कि वे उतना ही पढ़कर बन्द करदें जितना कि श्रोता लोग रुचि पूर्वक सुनें, बल्कि श्रोताओं के हृदय में यह इच्छा बाकी रहे कि ये अभी कुछ और पढ़ते तो अच्छा था। हजरत को यह ध्यान रखना चाहिये कि श्रोता लोग उनकी कविता से कुछ आनन्द भी ले रहे हैं या नहीं। ज्यों ही यह मालूम हो कि श्रोताओं की इच्छा उनकी कविताएं सुनने की वैसी नहीं जैसी होनी चाहिये तो उसे तुरन्त ही अपनी कविताएं सुनाना बन्द कर देना चाहिये। चहला की ईंट न हो जाना चाहिये।

सम्पादक जी! इन गलेबाज कवियों के सामने बेचारे अन्य कवि कौड़ी के तीन तीन भी नहीं रह गये। बेचारे बुरी तरह से रो रहे हैं तथा ठंडी स्वांसें ले रहे हैं। क्या कृपया उनकी सहानुभूति

में आप यह कविता प्रकाशित कर देंगे—

मैं कविता करना क्या जानूं !
मैं कविता पढ़ना क्या जानूं !

१

हैं लम्बे-लम्बे केश नहीं,
कवियों का सा है वेश नहीं,
कुछ ऐसा-वैसा लिखने का
है गुरुवों का आदेश नहीं ।

फिर कविता करना क्या जानूं !
मैं कविता पढ़ना क्या जानूँ !

२

जब मित्र-मंडली संग नहीं,
पढ़ने का उत्तम ढंग नहीं,
चल-चित्रवत है न कटाक्ष यहां
है गोरा - गोरा रंग नहीं ।

फिर कविता करना क्या जानूँ ।
मैं कविता पढ़ना क्या जानूँ ।

३

है अश्रु-साड़ी से प्यार नहीं,
'चिर मूक वेदना' हार नहीं,
'इस पार' रहा अपनों ही में,
मैं पहुँच सका 'उस पार' नहीं,

फिर कविता करना क्या जानूँ !
मैं कविता पढ़ना क्या जानूँ !

४

'अब गुंठन' में आनन्द नहीं,
'उर तंत्री-तार' पसन्द नहीं,
हाँ ! जीभ न कैंची बन पाती
हैं 'रबड़-केंचुवे' छन्द नहीं ।

फिर कविता करना क्या जानूं !
मैं कविता पढ़ना क्या जानूं !

५

है आनन लोभ-विहीन नहीं,
कविता भी है तुक हीन नहीं,
किस भांति रिझाऊं मैं तुम को,
हूं हाव-भाव में लीन नहीं ।

फिर कविता करना क्या जानूँ ।
मैं कविता पढ़ना क्या जानूँ ।

६

शिर सम्पादक का हाथ नहीं,
पैसे वालों का साथ नहीं,
तज स्वाभिमान दुनियां भर को,
मैं कहला फिरता 'नाथ' नहीं ।

फिर कविता करना क्या जानूं !
मैं कविता पढ़ना क्या जानूं !

७

'घुस-पैठ-कला' में दक्ष नहीं ।
है प्रबल इसी से पक्ष नहीं,

दो चार रटे छन्दों ही पर
है कवि बनने का लक्ष्य नहीं।
फिर कविता करना क्या जानूं!
मैं कविता पढ़ना क्या जानूं!

८

है अति ही कोमल अंग नहीं,
वेश्याओं से हैं ढंग नहीं,
फिर कवि कैसे कहलाऊं मैं
जब यहाँ 'फीस' का रंग नहीं!
फिर कविता करना क्या जानूं।
मैं कविता पढ़ना क्या जानूं!

९

शुचि रंग मंच पर घूम-घूम,
युग-हाथ नचा कर झूम-झूम,
कोयल के स्वर में गा न सका
मैं मचा सका अपनी न धूम!
फिर कविता करना क्या जानूं!
मैं कविता पढ़ना क्या जानूं!

संपादक जी! सुना आपने 'कवि सम्मेलन माहात्म्य'?
अच्छा तो विदा।
एक बार प्रेम से बोलिये 'जय कपीश्वर महाराज की!'

आपका वही—
कपि-बन्धु जी,
शाखा-निवास;
लांगूल नगर।

पन्द्रहवाँ चिट्ठा

अजी सम्पादक जी महाराज !

जय "सदा सुहागिल" की !

चिरकुट लाला को आप सदा सुहागिल ही समझें। हां पुरुष होने के नाते यदि आप चिरकुट लाला को सदा सुहागिल कहने से हिचकते हैं तो आप सदा 'कारा' भी उन्हें शौक से कह सकते हैं। मस्तराम जी को इस नाम से किञ्चित्मात्र भी आपत्ति नहीं है। 'साठा सो पाठा' का अविरल मन्त्र जपने वाले इन हजरत ने जाने कितनी बालिकाओं का बलिदान कर दिया है, परन्तु क्या मजाल कि चिरकुट लाला के वानर मुख पर कभी जरा भी शिकन आई हो। पांच 'चिर-संगिनियां' तो श्मशान की शोभा बढ़ा हो चुकी हैं अब छठी की बारी है। लाला का काला कलूटा तोंदधारी शरीर यदि कहीं यमराज महाराज देख लें तो भैंसा की तरह से छिंड़िया कर हजरत न भागें तो मस्तराम जी का जिम्मा, चिरकुट लाला का कहना है कि पुरुष कभी बूढ़ा होता ही नहीं है। जितने अधिक आप विवाह करेंगे उतनी ही आप की आयु तो बढ़ेगी ही साथ ही आपके लिये स्वर्ग के दरवाजे भी सदैव खुले ही मिलेंगे। आप कंधे पर 'लट्ठ' रखे सीधे ही विष्णु भगवान के दरबार में जा सकते हैं, मन चाही अप्सराओं से गठ-बन्धन भी कर सकते हैं और यदि चाहें तो आप इन्द्र को ढकेल कर इन्द्रासन पर भी विराजमान हो सकते हैं। कारण ? अजी इसका कारण तो बिलकुल ही स्पष्ट है। इतनी 'सड़ातनी' नहीं राम-राम—सनातनी कन्याओं का हम जो उद्धार कर देते हैं वह क्या कोई साधारण धर्म का काम है ? इतनी कन्याओं को जो हम समेटते चले जाते हैं-वे भले ही हमारी सूरत

देख कर विष पान कर लेती हों या आत्महत्या करके ही हमसे छुटकारा पा जाती हों—परन्तु हम तो उनका उद्धार करके ही दम लेते हैं। अतः वहु विवाह या अनेक विवाह के 'आविष्कारक' का संसार को कृतज्ञ होना चाहिए। उसके तलवे जीभ से चाटने को यदि किसी को मिल जाँय तो उसके अहोभाग्य।

हाँ तो चिरकुट लाला किसी छठी कन्या का बलिदान देने पर तुले हुए हैं। माना कि आप साठा के ऊपर हो चुके हैं परन्तु कन्या तो द्वादश वर्षीया ही होनी चाहिये। यह बात भी नहीं कि चिरकुट लाला समय को चाल न पहिचानते हों। तभी तो चिरकुट लाला का कहना है कि 'अजी इस २० वीं शताब्दी में भी यदि किसी की पत्नी अपढ़ है तो वह मनुष्य समझो बड़ा ही अभागा है। पति चाहे निरा बुद्धू ही क्यों न हो, किसी घोंघावसन्त का चाहे वह अग्रज ही हो, अथवा किसी 'चपरकनातिये' का सगा ताऊ ही क्यों न हो यहां तक कि चाहे पूरा 'लल्लू का दहसेरा' ही क्यों न हो, परन्तु पत्नी पूर्ण 'अपटू-डेट' हो तभी वह जोड़ा सुखी रह सकता है। पति भले ही आंखों में लीवर लेसे रहता हो, उसके बड़े-बड़े दांतों पर भले ही पूरे ६४० छटांक मैल जमा हो भले ही उसके अधर गजराज से भी मोटे क्यों न हों, पति देवता भले ही हूशल क्यों न हों. परन्तु पत्नी मैनका या रम्भा से किसी प्रकार कम सुन्दरी न होनी चाहिये। पति देवता की शक्ल देख कर भले ही किसी घूरे पर के 'कुकुरमुत्ता' का स्मरण हो आता हो, उनकी निशाचरी मूर्ति देखकर पशु-पक्षी भले ही भयभीत होकर अपने अपने प्राण लेकर क्यों न भाग जाते हों, भले ही आप को देखते ही बालकों में 'भागो-भागो' का कोलाहल क्यों न पड़ जाता हो, परन्तु पत्नी तो साक्षात् देवी स्वरूपा ही होनी चाहिए। अन्यथा बुढ़ऊ बाबा का जीवन ही व्यर्थ !

हां तो चिरकुट लाला बहुत सोच-समझ कर जोड़ा मिलाते हैं, चिरकुट लाला का हाल यह है कि आप योजन चार मूँछ रह ठाढ़ी का साक्षात् रूप हैं। तुलसीदास वर्णित-कुम्भ कर्ण का जिनको विश्वास न हो वह चिरकुट लाला के दर्शन करके अपनी शंका का समाधान कर सकते हैं। आप की नींद ! बाप रे बाप ! केवल खर्राटे से आप भले ही यह जान लें कि चिरकुट लाला अभी इस संसार में हैं नहीं तो-कसम चिथरिया पीर की आप कफन-दफन का प्रबन्ध करने की तैयारी करने लगें। और खर्राटे ? अजी खुदा की पनाह। मुहल्ले भर का सोना हराम हो जाता है। जिधर से सुनिये यही आवाज सुनाई देती है-"भाड़ में जाय चिरकुट लाला का सोना।" 'खर्र-खर्र' सुनते सुनते कान फटे जाते हैं। मालूम होता है गले में किसी ने बांस ही खोंस दिया है। बादल कड़कता रहे तो चाहे भले ही कुछ खामोशी बनी रहे; परन्तु यह खर्राहट तो जमीन ही हिला देगी। अजी इस 'खर्राहट' से कहीं भूचाल ही न आजाय, सोते समय चिरकुट लाला का मुँह एक बालिश्त से भी अधिक फैल जाता है। मक्खियों की फौजें सदासट भीतर घुसती रहती हैं। नाक जैसा तुमुल निनाद करती है, वह तो अवर्णनीय ही है। जिस समय चिरकुट लाला सुप्तावस्था में होते हैं उस समय मजाल नहीं। कि कोई अपरिचित उस स्थान पर खड़ा रहने का साहस भी कर सके।

सम्पादक जी ! बहुत छानबीन करने के बाद चिरकुट लाल को जब यह छटी पत्नी पसन्द आई तब उससे पाणिग्रहण संस्कार किया। भला मस्तराम जी ऐसे शुभ-अवसर पर अपने परम-मित्र श्रीचिरकुट लाला का अभिनन्दन न करते अथवा 'ऐसी युगुल जोड़ी' को देखकर भी यदि उनको आशीर्वाद न देते तो भला यह मस्तराम जी की कृतघ्नता होती या नहीं ? अतः 'युगुल जोड़ी' शीर्षक

यह कविता यदि आप अपने पत्र में प्रकाशित करदें, तो आज ही से मस्तराम जी आपके कौड़िया गुलाम हो जांय। तथा आपके नाम की जीवन भर माला फेरते रहें।

चिरजीवै जोड़ी जुगुल, जब लगि गंग-प्रवाह।
उइ कालिज की लल मुहीं, तुम कोयला अस स्याह।
तुम कोयला अस स्याह, कहां उइ उजली खरिया।
उइ पूनो की राति, सनीचर अस तुम करिया।
'मस्तराम' कह घुड़ुकि, बहिन हैं उटनी की वै।
तुम बगुला अस धीर, जुगुल जोड़ी चिरजीवै।

(२)

का छवि वरनौं दुहुन की, भले बने हौ आज।
को घटि, तुम हौ "घाघ" तौ, उइ नाचैं तजि लाज।
उइ नाचैं तजि लाज, बनें गदहा तुम रेंहकौ।
उइ कोयली की तान, साँड़ अस तुमहूँ डेंहकौ।
'मस्तराम' कह घुड़ुकि, धन्य तुम चापर चरनौं।
उइ बटेर तुम गिद्ध, बहुत कुछ का छवि वरनौं।

(३)

डारौं ऐसे जोग पुर, जग सुन्दरता वारि।
तुम गांजर के सोंद पति, उइ लखनौवा नारि।
उइ लखनौवा नारि दिहे, आंखिन पर बसमा।
जादू अस बइ पढ़े किहे, जिउ-जन्तुर बस माँ।
'मस्तराम' कह घुड़ुकि, नगाड़ा तुम पर वारौं।
तुड़ही लच्छेदार बहुरिया, पर तजि डारौं।

(४)

कैसी ढूढ़ेउ मलिकिनी, धन्य तुम्हार बिचार ।
जहां जहाँ तुम जाइहौ, करिहौ बंटाधार ।
करिहौ बंटाधार, मित्र ! तुम हौ सठियाने ।
उइ लोखरी कमजोर, कहां तुम स्यार पुराने ।
'मस्तराम' कहि घुड़ुकि, कहाँ उइ लीची जैसी ।
सड़े नारियल आप, मित्र ! यह जोड़ी कैसी ।

(५)

देखौ आपनि ओर तुम, भारी भर-कम देह ।
तुम हाथी उइ कमलिनी, कस सुन्दर यू नेह ।
कस सुन्दर यू नेह, रचेउ विधि जोगु संवारी ।
तुम हौ भूखे बाघ, कहाँ उइ बकरी न्यारी ।
'मस्तराम' कह घुड़ुकि, बनाये हो तस भेखौ ।
कैसी जोड़ी जुगुल, मिली दोनो की देखौ ।

(६)

धनि तुम लठमुसरा मरदु, धन दुलहिनि सौखीन ।
तुम भुरजी के करछुला, उइ भुरकी रंगीन ।
उइ भुरकी रंगीन, चमेली असि उइ फूली ।
उइ मोड़ी नायाब, कहां खच्चर मामूली ।
'मस्तराम' कह घुड़ुकि न ऐंठौ मोछैं हनि-हनि ।
रहौ आप माँ मित्र ! जुगुल जोड़ी है धनि-धनि ।

(७)

लायौ दुलहिनि कैसि तुम, किहेउ कौन यू काम ।
उइ हैं सूखी रसभरी, तुम बम्बैया आम ।
तुम बम्बैया आम बने घनचक्कर घूमौ ।

कौन गुनन पर रीझि चरन इनके तुम चूमौ।
'मस्तराम' कह घुड़ुकि मित्र तुम कस बौरायौ।
कौन मुलुक ते ढूढ़ि, मेहरुवा यह तुम लायौ।

(८)

ह्वैगे का असि अक्किलौ जस तुमार यू पेट।
छुई मुई की उइ लता तुम बबूर के बेट।
तुम बबूर के बेट, बनी उइ छप्पन छूरी।
तुम कुम्हड़ा अस डवल, बहू नन्हकैया मूरी।
'मस्तराम' कह घुड़ुकि न, जानी का या कैगै।
छाँटेउ कस यू जोग मित्र! कसि अक्किल ह्वैगै।

(९)

जोड़ी है तौ बस यहै, और सबै हैं झोल।
जानै का या कै दिहिस, गिटपिट-गिटपिट बोल।
गिटपिट गिटपिट बोल, भरे उइ जस फर्राटा।
तस तुम करिहौ साफ़ बने, धोबी कस पाटा।
'मस्तराम' कह घुड़ुकि, न तुम कम, ना उइ थोड़ी।
तुम संखासुर बीर, मंजीरा की उइ जोड़ी।

अच्छा तो अब बिदा।

आपका वही—
छिपा रुस्तम
घुरघुच गली
भड़भूंजा नगर।

सोलहवाँ चिट्ठा

भैया सम्पादक जी !

जय संड मुसंडा की।

और कुछ सुना आपने ? 'रंडुवा-क्लब' के लिये समाचार पत्रों में कई वर्षों से हो-हल्ला मचा हुआ था, उसकी स्थपना कल प्रातःकाल स्थानीय 'उजाड़-मन्दिर' के 'शून्य हाल में' हो गई। 'रंडुवा-क्लब' क्यों कायम हुआ, उसके उद्देश्य निम्नालिखित हैं—

(१) नारि मुई गृह-सम्पति नासी,
मूड़-मुड़ाय भये सन्यासी—लोकोक्ति कहांतक सत्य है; इसका पता लगाना।

(२) रँडुवों का कभी-कभी सम्मेलन करना तथा उनके अनुभव से संसार को अवगत कराना।

(३) रँडुवों में रस उत्पन्न करना।

(४) 'रँडुवा-क्लब' का प्रचार करना।

(५) रँडुवा राज्य स्थापित करना।

(६) सामूहिक-रूप से भगवान से प्रार्थना करना कि संसार रँडुवा-मय हो जाय।

(७) देश के कोने कोने में रंडुवा-क्लब की शाखायें स्थापित करना तथा

(८) 'रंडुवा क्लब' के अधिक से अधिक सदस्य बनाना।

सम्पादक जी ! 'रंडुवा-क्लब' के पदाधिकारियों का चुनाव अभी नहीं हुवा है। किसी पदाधिकारी के लिये निम्नलिखित योग्यताओं का होना अनिवार्य है।

(१) रंडुवा की आयु कम से कम चालीस वर्ष की हो।

(२) क्रोध में वह दुर्वासा ऋषि का चाचा हो।

(३) गृहस्थी के जंजाल में में जो रंडुआ बुरी तरह से उलझा हो।
(४) विशेषता उस व्यक्ति को दी जायगी जो कम से कम तीन बार रंडुवा हो चुका हो।
(५) एक दो बार का रंडुआ केवल सदस्य हो सकता है पदाधिकारी नहीं।
(६) दो बार से अधिक जो महाशय रंडुवा हो चुके हैं उन्हें 'भंडुवा' की सर्वोच्च पदवी से विभूषित किया जा सकता है।

मस्तराम जी को रह-रह कर उन लोगों की बुद्धि पर तरस तथा क्रोध आता है जो भारत वर्ष में रंडुवा-क्लब का विरोध कर रहे हैं। अजी साहब! जिस देश का प्रधान-मंत्री रंडुवा हो, जहां का राष्ट्र-पिता रंडुवा होकर जीवन-लीला समाप्त कर चुका हो इतना ही नहीं जहां का प्रथम गवर्नर जनरल भी रंडुवा ही हो. उस देश में भी यदि 'रंडुवा-क्लब' की स्थापना न हुई तो वह देश का दुर्भाग्य ही कहा जायगा या नहीं? जहाँ का प्रथम गृह-मंत्री तथा शिक्षा-मंत्री तक रंडुवा ही रहा हो उस देश में-जो है सो 'रंडुवा-क्लब' का विकास न होगा तो किस देश में होगा? जिस देश का प्रथम कानून-मंत्री भी रंडुवा हो (बाद में वह रंडुवा न रह जाय यह दूसरी बात है) उस देश में रंडुवा-क्लब नहीं फूले फलेगा तो फिर किस देश में वह पनपेगा? राजनीतिक-क्षेत्र के जितने भी नेता हैं गणना करके देख लीजिये यदि उनमें से अधिक रंडुवा ही न निकलें तो मस्तराम जी का एक कान कतरवा लीजियेगा। अतः मस्तराम जी डंके की चोट पर कह सकते हैं कि 'रंडुवा-क्लब' की स्थापना से इस देश की सभी जटिल समस्याएं स्वतः हलहो सकती हैं अन्यथा नहीं।

भैया! मस्तराम जी व्यर्थ ही में बहकी बहकी बातें नहीं करते हैं। वे बत्तीसों अधन्ने सही हैं। राजनीतिक-क्षेत्र को छोड़िये अब

जरा साहित्यिक-जगत की ओर दृष्टिपात करिये तो वहां भी रंडुवा का ही बोल बाला है। छायावाद के प्रवर्तक 'निराला' जी को आप जानते ही हैं—वे भी हजरत रंडुवा ही हैं। पंत जी रंडुवे न सही तो रंडुवा के ही भैया-भतीजों में से हैं। अतः आप कैसे कह सकते हैं कि ' रंडुवा-क्लब' एक बेकार की चीज है। क्या 'कहिए गुरुता उनकी जिनके गुरु के गुरु चेले हुये' की साक्षात् मूर्ति 'सनेही' जी भी रंडुवा ही तो हैं। देव बिहारी के लेखक समालोचक प्रवर पं० कृष्ण बिहारी मिश्र तो रंडुवा हैं ही साथ ही हिन्दी सभा, सीतापुर के महामंत्री पं० नवल बिहारी मिश्र तक जब रंडुवा हैं, तब भला 'रंडुवा' क्लब की तरफ कौन उंगली उठा सकता है। ठाकुर त्रिभुवन सिंह जी 'सरोज' को तो पहले ही से 'रंडुवा' होने का सौभाग्य प्राप्त है, 'कृपाण' जी 'रंडुवों' पर कुछ ऐसे रीझे कि आव देखा न ताव, चट से आप भी रंडुवा-क्लब में आ धमके। अब भला है किसी में इतनी शक्ति जो रंडुवा-क्लब को कोई हानि पहुँचा सके ?

संपादक जी ! एक बार रँडुवा होकर भी जो रंडुवा नहीं रह पाता उसके दुर्भाग्य पर मस्तराम जी कहां तक रोयें। एक बाबू जी को भगवान ने दो बार रंडुवा किया, परन्तु उन्हों ने रंडुवा शब्द को हाय ! हाय !! कलंकित करके ही दम लिया। अन्त में वही हुवा जो उनके भाग्य में बदा था, भड़ुवा बन गये। अब उन हजरत का 'भड़ुवा-जीवन' पहाड़ तुल्य हो रहा है, जीवन काटे नहीं कटता। अब यदि वे 'रंडुवों' को देख कर उनके जीवन से हसद करते हैं तो अब सब बेकार ! 'अब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुनगईं खेत' या अब तो 'आइ परे कठ पींजरे, लेख राम का नाम' के अतिरिक्त अब हो ही क्या सकता है ? क्या कृपा करके उन 'भड़ुवा' महोदय के हृदय को सान्त्वना देने के लिये आप बाबू और

बीबी शीर्षक यह कविता अपने पत्र में प्रकाशित कर देंगे ?

(१)

बाबू को बीबी मिली, जैसे लम्बा बांस ।
खटका करती जो उन्हें, उंगली की ज्यों फाँस।
उंगली की ज्यों फांस, न कुछ भी उनको गिनती ।
देती है दुतकार, न सुनती उनकी विनती ।
'मस्तराम' जी कहें, न बीबी पर है काबू।
फिर किस विधि हा राम! बितायें जीवन बाबू।

(२)

बाबू रो-रो कर कहें, हा ! जीवन है व्यर्थ ।
सूर्पणखा की बहन तुम, अधिक न करो अनर्थ ।
अधिक न करो अनर्थ, ताड़का की तुम चाची ।
किस विधि छूटे राम! पड़ी गर्दन में मांची।
'मस्तराम' जी कहें, नारि है या गिरि आबू ।
मिली पूतना हाय ! पटक सर रोवें बाबू ।

(३)

रहते बीवी से सदा, बाबू जी हैरान ।
बिल्ली से कैसे बचे हा ! चूहे की जान ।
हा! चूहे की जान, जान पर है बन आई ।
धत्तेरी तक़दीर ! बहू क्या, हथिनी भाई ।
'मस्तराम' जी कहें, अश्रु युग युग से बहते ।
ज्यों बाघिन-मुख हरिणि, उसी विधि बाबू रहते ।

(४)

कैसी बाबू जी करें, सुने कौन अब हाय ।
राक्षस-गण की नारि यह, इससे कौन उपाय ।

इससे कौन उपाय, हाय रे ! अब क्या होगा ।
बीबी जलनिधि-धार, बने बाबू जी डोंगा !
'मस्तराम जी कहें, नारि की ऐसी तैसी ।
सहे कौन फुफकार, सर्पिणी संगति कैसी ।

(५)

खाते बीबी की सदा, बाबू जी हैं डाट ।
बाबू जी का हो गया, जीवन बारह बाट ।
जीवन बारह बाट, गये छिन उनके सब हक ।
अब बीबी हैं चील, और बाबू जी मेढक ।
'मस्तराम' जी कहें, दुपक बाबू जी जाते ।
पीते 'कड़ुवा घूंट', और 'गम' हैं बस खाते ।

(६)

पड़ती बीबी की जभी, बाबू पर फटकार ।
दफ्तर की तो शान सब, हो जाती बेकार ।
हो जाती बेकार, हृदय पर लगता मुक्का ।
चिलम गई जब रूठ, करे क्या केवल हुक्का ।
'मस्तराम' जी कहें, ताल दे बीबी लड़ती ।
लख मुर्गी सी झपट, न कल बाबू को पड़ती ।

(७)

रहती बाबू से सदा, बीबी की छठ आंठ ।
बीबी क्या है हाय रे ! ज्यों लकड़ी की गांठ ।
ज्यों लकड़ी की गाँठ न बाबू की कुछ चलती ।
उन भोंदू की दाल न बीबी से है गलती ॥
'मस्तराम जी कहें 'फूल' बाबू को कहती ।
ज्यों कुत्ते की पूँछ उसी विधि बीबी रहती ॥

सम्पादक जी ! 'रंडुवा क्लब' के कुछ नारे भी हैं। आशा है एक सहृदय व्यक्तिहोने के नाते आप इन नारों को अवश्य ही छापने की कृपा करेंगे। ताकि 'रंडुवा क्लब' का दिन दूने रात चौगुने प्रचार हो तथा उसकी छाया में रहकर देश ही क्या-सम्पूर्ण विश्व समृद्धशाली हो सके।

नारा नं० (१)-रंडुवा राज्य- जिन्दाबाद।

नारा नं० (२)-रंडुवा क्लब- जिन्दाबाद।

नारा नं० (३)-लेके रहेंगे-रंडुवा राज्य।

नारा नं० (४)-बनके रहेगा-रंडुवा राज्य।

अच्छा तो फिर कभी भिड़न्त होगी।

आप का वही—

दीर्घ-चञ्चु,

रंडुवा रोड,

नया नगर।

सत्रहवाँ चिट्ठा

हरे सम्पादक जी महाराज !

जय हो अन्धेर नगरी की ।

बाबा तुलसीदास ने स्पष्ट शब्दों में कहा है 'बन्दौं खल जन सहज सुभाये' । अतः खलों का अन्धेर नगरी से गहरा सम्बन्ध होने के कारण यदि मस्तराम जी 'अन्धेर नगरी की जय बोलते हैं तो इससे मस्तराम जी कोई अनुचित बात नहीं कर रहे हैं। अभी कल ही की तो बात है कि एक हज़रत उछल-उछल कर कह रहे थे– 'अजी, इन अध्यापकों को क्या हो गया है जो हड़तालें करते रहते हैं। प्राचीन काल के अध्यापकों को देखिये विद्यार्थियों को 'मुफ्त' में शिक्षा दिया करते थे, न उन्हें राजनीति से कोई प्रयोजन था, न दुनियाँ के और झगड़ों से ही। ऋषि-मुनियों की तरह से बनों में रह कर अपना जीवन व्यतीत करते थे। तथा पठन पाठन में विमग्न रहते थे। 'साथ ही इतना चिल्ला रहे थे कि कुछ पूछिये मत'। कभी मेज़ पर हाथ पटकते, कभी हाथ पर हाथ दे मारते और कभी इतने तैश में आ जाते कि मानो आज आसमान ही हिला कर रख देंगे।

ऐसे अवसर पर भी मस्तराम जी यदि उन बीसवीं सदी के महापण्डित को शाबाशी न देते तथा 'साधुवाद-साधुवाद' के तुमुलनिनाद से सम्पूर्ण आकाश को हिला न देते तो यह उनकी असभ्यता तथा हृदय हीनता थी या नहीं ? क्यों कि बाबा तुलसी दास ने यह भी — जो है सो क्या नाम करके– चिल्ला-चिल्ला कर कह दिया 'पंडित सोई जो गाल बजावा' अतः गाल बजाने की कौन कहे जो पूरा मुंह ही बजा रहा हो, उसे 'पंडित' कैसे न

माना जाय। अजी वह 'पंडित' ही काहे का जो छिद्रान्वेषी न हो जो एक जबान में किसी को एक हजार एक गालियाँ न दे सकता हो, जो बुद्धि में अपने को बृहस्पति देव का नगड़दादा न समझता हो, जो पागलों की तरह ऊटपटाँग बकने में बेजोड़ न हो; जिसकी नकेल बुरी प्रकार से टूट न गई हो जिसकी अगाड़ी पिछाड़ी कट कर गिर न गई हो तथा जो दुलत्ती झाड़ने में 'शीतला वाहन' से भी दो हाथ आगे न हो।

हाँ तो 'कलियुगी विद्वान की परिभाषा भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। परन्तु मस्तराम जी की राय शरीफ़ में कलियुगी विद्वान 'विशेषतः बीसवीं सदी' का धुरन्धर विद्वान वह है जो केवल इतना ही पढ़ा हो कि वह अपने हस्ताक्षर ही कर सकता हो, मतदाताओं की लिस्ट टो-टो कर पढ़ लेता हो तथा मौके बेमौके अमरसिंह की नौटंकी भी बांच लेता हो परन्तु जबान ऐसी हो कि कैंची भी उसके सामने तोबा बोल जाय। जिसकी 'कथनी' और 'करनी' में जमीन आसमान का अंतर हो। चाटुकारिता में हाँ हुजूरी में, खुशामद में जो अपने को संसार का शिरमौर समझता हो। चुनाव चर्चा में जिसके बचन वेद वाक्य माने जाते हों तथा नेताओं के घरों की देहलियाँ जिस की नाक से रगड़ खाते खाते घिस कर नाम मात्र को रह गई हों वही कलियुग का उद्भट विद्वान है।

सम्पादक जी! है अब आप में इतना साहस जो आप यह कह सकें कि उक्त महाशय पूर्ण विद्वान नहीं हैं? यदि हो साहस तो उतरिए मैदान में। खुले बाजार में यदि आप की टोपी न उतरवा ली जाय तो मस्तराम जी की गर्दन दबा दीजियेगा। सत्य मानिये सम्पादक जी! जिस समय उक्त कलियुगी

महाराज गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहे थे तथा अध्यापकों को खरी खोटी सुना रहे थे, तो मस्तराम जी पहले तो यही समझे कि कोई वैशाखनन्दन सीपों-सीपों कर रहा है। फिर ध्यान में आया हो न हो यह किसी ऊँट का बच्चा है, जिसकी नकेल टूट गई है और अब वह बुरी तरह से बलबला रहा हो। उक्त महाशय ने जब बादल की तरह गरजकर कहा कि—'अध्यापक देशद्रोही हैं, उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम की गाड़ी आगे ढकेलने के स्थान पर उसे पीछे खींचा है।'—तब तो मस्तराम जी से न रहा गया। बोल ही तो उठे, "बिल्कुल ही बजा फर्माते हैं जनाब! इन अध्यापकों को गोली से उड़वा देना चाहिए। भला नौकरी करके भी जो कोई वेतन मांगे उससे बढ़कर मूर्ख और कौन होगा? अध्यापक का नैतिक स्तर ऊँचा होना ही चाहिये। यदि साधारण जीवधारियों की भांति उसके भी मुँह पेट हो, वह भी अपने बाल बच्चों को सुखी देखना चाहता हो तो वह शिक्षक ही काहे का? माना कि आप नित्य-प्रति सिनेमा देखते हों; पान-बीड़ी-सिगरेट में पैसा फूंकते हों, कभी-कभी रंगीन शर्बत का भी स्वाद ले लेते हों, मोटरों में तथा शान-शौकत एवं ठाठ-बाट में पानी की तरह से पैसा बहा सकते हों, परन्तु शिक्षक होकर भी यदि वह अन्न-वस्त्र के लिये पैसा मांगे तो उसे गोली के घाट उतार देना चाहिये या नहीं? आप अपने बच्चों के लिये उच्च शिक्षा का प्रबन्ध करें, उनके पालन-पोषण के लिये महीने में सैकड़ों रुपिया खर्च करें, श्रीमती जी की फरमाइशें पूरी करने के लिये खजाना खोल दें, परन्तु एक अदना अध्यापक भी चाहे कि उसे इतना पैसा मिल जाय कि वह अपने बाल बच्चों का पेट भर सके, उन्हें उच्च शिक्षा न सही, साधारण ही शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध कर सके या घरवाली के तन ढाकने भर का वस्त्र

किसी प्रकार से जुटा सके तो क्या ऐसा अध्यापक खुल्लमखुल्ला विद्रोही या देश-द्रोही नहीं है ? मस्तराम जी तो कहते हैं कि ऐसे अध्यापक का सर फौरन से पेश्तर कटवा लेना चाहिये। मस्तराम जी तो डंके की चोट पर कहते हैं जिस अध्यापक को इतना भी अभ्यास नहीं कि वह फूल सूँघकर ही जीवित रह सकता हो, दिशाओं को ही जो अपना परिधान बना सकता हो तथा जो अपने को 'चैतन्य' न समझकर पूर्ण जड़ ही न समझ सकता हो, उसे फौरन फांसी का हुक्म होना चाहिये।

क्या कहा ? प्राचीन काल के शिक्षक आज-कल की तरह से वेतन नहीं लेते थे। बिल्कुल ठीक महाराज ! जिस पोथी में आपने यह पढ़ा है, क्या उस पोथी का वह पृष्ठ जनाब ने फाड़ तो नहीं डाला जिसमें यह भी लिखा है कि गुरुवों की आज्ञा पर ही, उनकी राय से ही, उस समय सम्पूर्ण शासन चलता था। किसी भी राज्य के बिगाड़ने तथा बनाने तक का पूर्ण अधिकार उनको प्राप्त था क्या गुरु वशिष्ठ, द्रोणाचार्य अथवा सांदीपिन की कथायें जनाब ने उस पोथी में नहीं पढ़ी है ? क्या जनाब ने यह भी नहीं पढ़ा है कि शिष्य तथा उसके अभिभावक गुरुवों के सामने हाथ जोड़े खड़े रहते थे, उनकी हार्दिक इच्छा यही रहती थी कि गुरु जी अपने मुँह से कुछ तो उनसे मांगें। जी नहीं ! मीठा मीठा हप कड़ुवा-कड़ुवा थू।

मस्तराम जी की इस 'बकवास' से उक्त महाशय कुछ झेंप तो अवश्य गये, परन्तु शर्म का मर्म वे खूब समझते थे। अतः गर्म होने के बजाय कुछ नर्म पड़ गये तथा वह प्रसंग छोड़कर धर्म कर्म की आड़ में बौखला-बौखलाकर गालियां देने लगे।

सम्पादक जी ! कुछ लोग तो पावें हजारों रुपये मासिक

और फिर भी उतना उनके लिये कम है। और कुछ लोग पावें तीस ही चालीस रुपये महीने में और फिर भी वह उनके लिये पर्याप्त से अधिक है। है न यह सब अन्धेर। अतः एक बार फिर प्रेम से बोलो अन्धेर नगरी की जय।'

एक बात और। यदि कृपा करके 'शिक्षक से' शीर्षक यह कविता आप अपने पत्र में प्रकाशित कर दें तो मस्तराम जी जीवन-पर्यन्त आपके एहसानमन्द रहेंगे।

शिक्षक से

(१)

शिक्षा-मंत्री प्रवर की, मानो बन्धु! सलाह।
घर से भी कुछ दान दो, मत मांगो तनख्वाह।
मत मांगो तनख्वाह, अजी तुम तो हो शिक्षक।
डटो वायु भर पेट, सभ्यता के हे रक्षक।
'मस्तराम' जी कहें तुम्हें, है यर्जित भिक्षा।
फटी लंगोटी बांध, रहो तुम देते शिक्षा।

(२)

शिक्षक होकर भी भला, वेतन की हो चाह।
इससे बढ़कर बन्धुवर! होगा कौन गुनाह?
होगा कौन गुनाह, न पालो बीबी-बच्चे।
त्यागो सबसे मोह, तभी हो शिक्षक सच्चे।
'मस्तराम' जी कहें, बनो तुम द्रुम-दल-भक्षक।
वे मंत्री हैं प्रवर, कहां तुम केवल शिक्षक।

(३)

मंत्री को है हुक्म सब, वेतन, भत्ता, भेट।
पर तुम शिक्षक भी कहीं रखते हो मुंह-पेट।
रखते हो मुँह-पेट, कभी क्या तुम भी थकते।
तुम तो हो गुरुदेव, बिना खाये जी सकते।
'मस्तराम' जी कहें, बजाओ तुम उर-तंत्री।
चाटो ले सम्मान, शहद दे देंगे मंत्री।

(४)

दानी बन कर शम्भु सम, देते हो गुरु ज्ञान।
भस्मासुर बन बाद में, वे करते हैरान।
वे करते हैरान, तुम्हीं पर अस्त्र चलाते।
वीतराग का पाठ तुम्हें, उलटा सिखलाते।
'मस्तराम' जी कहें, अजी तुम कैसे ज्ञानी।
अब रोना है व्यर्थ, बने क्यों पहले दानी।

(५)

पहले विद्या-दान कर तुमने किया अनर्थ।
फिर बदला वे क्यों न लें, जब हैं आज समर्थ।
जब हैं आज समर्थ, भला वे फिर क्यों चूकें।
गुरु-सम्मुख क्यों आज, न अरबी-तरबी बूकें।
'मस्तराम' जी कहें, कलेजा क्यों कर दहले।
तुमने क्यों इस योग्य, बनाया उनको पहले।

(६)

शिक्षा दे तुमने इन्हें, कितना किया अधर्म।
शिक्षक ! बोलो क्या तुम्हें, उचित यही था कर्म ?
उचित यही था कर्म. मूर्ख को विज्ञ बनाना ?
कितना गुरुतम पाप, किसी को बंधु, पढ़ाना।
'मस्तराम' जी कहें, न पाओगे तुम भिक्षा।
तौबी यदि बच जाय, सफल तो समझो शिक्षा।
अच्छा तो फिर शेक-हैण्ड, गुड-बाई।

आपका—
अहं उपोरशंखोस्मि
वदन्म्येव ददामिनो।

अठारहवां चिट्ठा

अजी सम्पादक जी महराज !

जय सोटा नारायण की ।

'यथा नाम तथा गुण'। अतः निराला जी की कविता में यदि सर्वत्र निरालापन ही दृष्टिगोचर होता है इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का स्थान हिन्दी साहित्य में ऊँचा है तो इसके दो कारण हैं। एक तो आप की अधिकांश कविताओं में अलौकिक -चमत्कार पायाजाता है दूसरे कविवर पंत जी के सदृश नवीन प्रणाली की कविताओं मे सुन्दर ढंग से प्रकृति वर्ण न करना। आप की कविताओं में भाव कूट कूट कर भरे होते है परन्तु सरलतापूर्वक हृदयंगम नहीं किये जा सकते हाँ शब्द-योजना देखकर कर कहीं-कहीं पर चकित रह जाना पड़ता है सबसे बड़ा आश्चर्य तो इस बात का है कि जितनी कविताएं आपकी छन्द-शास्त्रन्तर्गत हैं, वे प्रायः सभी भाव पूर्ण हैं और जितनी मुक्त छन्दों में हैं वे प्रायः भाव मुक्त भी हैं पाठक देखें निम्नाङ्कित पंक्तियाँ कितना भावपूर्ण तथा सुन्दर है—

तुम तुङ्ग हिमालय श्रृंग,
और मैं चंचल गति सुर सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास
और मैं कान्त कामिनी कविता
तुम मृदु मानस के भाव,
और मैं मनोरञ्जनी भाषा ।
तुम नन्दन-वन-घन विपट,
और मैं सुख शीतल तल शाखा ।

तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म
मैं मनोमोहिनी माया ॥

इन पंक्तियो को एक दो बार नहीं, पचासों बार पढ़िये, परन्तु प्रत्येक बार आपको वही आनन्द प्राप्त होगा भाव कविता के आगे आगे थिरकता चलता है। शब्दावली कोमल तथा मनमोहनी है। इस प्रकार की आपकी एक ही नहीं अनेक कविताएं हैं। उस पर भी आप कहीं-कहीं मनगढ़न्त छन्दों के फेर में पड़कर अपनी अमूल्य कवित्वशक्ति को एक प्रकार से व्यर्थ ही कर डालने पर उतारू हो जाते हैं। आप 'परिमल' की भूमिका में एक स्थान पर लिखते हैं।

"मनुष्यों" की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है।

मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के प्रबन्ध से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह भी दूसरे के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिये होते हैं, फिर भी स्वतन्त्र, इसी तरह कविता का भी हाल है। मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिये अनर्थकारी नहीं होता किन्तु उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण का ही मूल होती है। जैसे बारा की बँधी और खुली हुई दोनों ही प्रकृति सुन्दर हैं, पर दोनों के आनन्द दृश्य दूसरे दूसरे हैं। इसके लिखते समय कदाचित 'निराला' जी ने यह नहीं सोचा कि शासन और नियम में जमीन आसमान का अन्तर है। सारा संसार नियम ही से चलता है। यदि कोई मनुष्य संयमी है और नियम पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता है, तो कोई यह कदापि नहीं कह सकता कि उस पर कोई शासन करता है अथवा वह परतन्त्र है। यही हाल

कविता का भी है। कविता तो सदैव स्वतंत्र तथा मुक्त है। यदि नियम तोड़ने का ही नाम स्वतन्त्रता है तब तो बात ही दूसरी, नहीं तो नियम बद्ध होते हुए भी कविता समुद्र के समान स्वतन्त्र है, समुद्र स्वतन्त्रता पूर्वक जब चाहता है लहरें लेता है, उछलता है अथवा शांत रहता है, परन्तु अपनी सीमा का उल्लंघन नहीं करता। उसका तो नियम ही यह है। इसी प्रकार कविता भी नियम के अन्दर रहती हुई भांति-भांति के शब्द तथा भाव व्यक्त कर सकती है। प्रकृति ही नियम बद्ध है, फिर कविता इत्यादि का क्या कहना। यदि सूर्य भगवान कभी पूर्व में, कभी पश्चिम में, कभी उत्तर या दक्षिण में निकलने लगें तो प्रकृति का क्या हाल होगा ? उसकी सारी सुन्दरता पर पानी पड़ जायगा। इसी भाँति कविता की एक पंक्ति दो अंगुल की तथा दूसरी एक बालिश्त से भी अधिक की होने लगे तो निस्सन्देह उसकी पूरी मुक्ति हो जायगी। हां, अतुकान्त कविता के मस्तराम जी विरोधी नहीं हैं। उसमें सचमुच कहीं कहीं तुकान्तों के फेर में पड़कर मनुष्य को परतन्त्र हो जाना पड़ता है और इससे उसके सुन्दर भावों की हत्या हो जाती है। आगे चल आप यजुर्वेद का चार पंक्तियों का एक मन्त्र देकर लिखते हैं:-

'जरा चौथी पंक्ति को देखिये कहां तक फैलती चली गई है। फिर भी किसी ने आज तक आपत्ति नहीं की है। शायद इसके लिए सोच लिया है कि साक्षात् परमात्मा आकर लिख गये हैं। अजी परमात्मा स्वयं अगर यह खड़ छन्द और केंचुवा छन्द लिख सकते हैं, तो मैंने कौन सा कसूर कर डाला ? आखिर आपके परमात्मा ही का तो अनुसरण किया है। आप लोग कृपा कर के मुझे क्यों नहीं क्षमा कर देते ?'

इसके उत्तर में निराला जी से अत्यन्त नम्रता पूर्वक निवेदन हैं कि विद्वानों को इस बात की इसलिए चिन्ता है कि वे इसका फल देख चुके हैं। शायद इस प्रकार केचुवा खड़ छन्द वेद रचयिताओं के बाद लोगों को पसन्द नहीं आए। इसीलिए वे वेदों ही तक रह गए, आगे फिर किसी ने कभी कोई वैसा छन्द नहीं रचा, संस्कृत साहित्य में बाद की जितनी कविताए हैं, वे सब अनुकांत तो हैं परन्तु छन्दशास्त्र से पृथक नहीं हैं। इसीलिए भय है कि जिस प्रकार वेदों की कविता वेदों ही तक रह गयी आगे नहीं बढ़ी इसी प्रकार यह कविता भी यहीं तक न रह जाय और इसका सारा श्रम व्यर्थ हो जाय। धार्मिक दृष्टि-विन्दु से तो वेद भगवान हिंदू मात्र के सर्वस्व हैं परन्तु इन 'ऊट-पटांग छन्दों के कारण साहित्य में उन का कोई स्थान नहीं। क्या मस्तराम जी आप से यह पूछने की धृष्टता कर सकते हैं और क्या आप यह बतलाने का कष्ट गवारा कर सकते हैं कि साहित्यिक दृष्टि से 'कालिदास कृत' 'रघुवंश' या 'शाकुन्तला' नाटक का जो आदर है वह वेदों का भी है इसके अतिरिक्त आप तो साहित्य का निर्माण कर रहे हैं न कि किसी धार्मिक ग्रंथ का। अतः आगे चलकर इसका क्या मूल्य रह जायगा, इसका निर्णय तो विद्वत्समुदाय ही कर सकता है, परन्तु यह सर्व विदित है कि आपने जिस मंत्र को उदाहरण में पेश किया है उस प्रणाली की कविता सिवा उसी ग्रन्थ में और कहीं नहीं पायी जाती। यहाँ पर उस मनुष्य का बरबस स्मरण हो आता है, जिसने अपने पिता का बखान करते हुए कहा था कि मेरे पिता बड़े ही साहसी थे, एक बार शेर से भी भिड़ गये थे। किसी ने पूछा, 'फिर उसका फल क्या हुआ था ?' उत्तर मिला "फल क्या होता शेर मारकर खा गया।" यही हाल वेद-मंत्रों का है। उस प्रकार की कविता में वेद मंत्र रचकर क्या हुआ ? यही कि उस प्रणाली की कविता

वहीं तक रह गई। यह सब कहने में मस्तराम जी का दृष्टिकोण साहित्यिक है न कि धार्मिक। उसी भूमिका से निराला जी फिर लिखते हैं --

"मुक्त छन्द तो वह है जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है। इस पुस्तक के तीसरे खण्ड में जितनी भी कविताएं हैं, सब इसी प्रकार की हैं। उसमें नियम कोई नहीं। केवल प्रवाह कवित्त छन्द सा जान पड़ता है। कहीं-कहीं आठ अक्षर आप ही आप आ जाते हैं, मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है, वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उसका नियम साहित्य उसकी मुक्ति"। इसी प्रकार एक स्थल पर आप फिर लिखते हैं 'जहां मुक्ति रहती है वहां बन्धन नहीं रहते। न मनुष्यों में न कविता में। मुक्ति का अर्थ ही बन्धनों से छुटकारा पाना है। यदि किसी प्रकार का शृंखलाबद्ध नियम कविता से मिल गया तो वह कविता उस शृंखला से जकड़ी हुई होती है, अतएव उसे हम मुक्ति के लक्षणों में नहीं ला सकते, न उस काव्य को मुक्त काव्य कह सकते हैं।" उपर्युक्त पंक्तियों से यह साफ़-साफ़ प्रकट होता है कि आप नियम के विरोधी हैं। नियमित रूप से कार्य होने के पक्षपाती नहीं। हरन्तु मस्तराम जी यह निवेदन करते हैं कि यदि इसी विचार के लोग सृष्टि के आदि में भी होते अथवा जिन्होंने व्याकरण या अक्षर बनाये हैं, वे लोग भी इसी विचार के होते तो भाषा इत्यादि शायद कुछ भी न बन पाती क्योंकि कोई अपनी इच्छा से वाक्य के प्रथम 'कर्ता' रखता तो कोई पहले 'क्रिया' ही जमा देता। कोई 'क' अक्षर को ऐसा रूप देता तो कोई कुछ और। फल यह होता कि अपनी अपनी ढपली अपना अपना राग हो जाता। यही हाल आपकी कविता का भी है। यदि आपकी कविता में कहीं-कहीं आठ-आठ अक्षर

आप ही आप आ गये हैं तो सम्भव है औरों की कविताओं में छः छः या चार-चार शब्द आप ही आप आ जायें। कहने का अभिप्राय यह है कि सारा काम बदली के भरोसे पर है। यदि 'आप ही आप' अक्षर ठीक स्थान पर आ गये तो आ गये, नहीं तो मैदान साफ़। अर्थात जैसा कि 'निराला' जी ने 'परिमल' की भूमिका के अन्त में लिखा कि "स्वच्छन्द छन्द नाटक पात्रों की भाषा के लिये ही है, यों उसमें चाहे जो कुछ लिखा जाय" इसका प्रयोग नाटकों ही में रहे तो अच्छा है परन्तु कविता से इसका कोई सम्बन्ध न रहे। अब ज़रा नीचे की पंक्तियां देखिये कैसे आठ-आठ अक्षर 'आप ही आप' आ गये हैं—

क्षुद्र ऊर्मियों की तरह,
टक्कर लेते रहें तो,
निश्चय ही
वेग उन तरंगों का,
और घट जायगा,
क्षुद्र से क्षुद्रतर होकर वे मिट जायँगी
चंचलता तो शान्त होगी

—(महाराज शिवाजी का पत्र)

पाठक देखें कि इन पंक्तियों को सीधे ही "क्षुद्र ऊर्मियों की तरह टक्करें लेते रहें तो निश्चय ही वेग उन तरंगों का घट जायगा, क्षुद्र से क्षुद्रतर होकर वे मिट जायँगी, चंचलता शान्त हो जायगी।" इस प्रकार से लिख सकते हैं। नहीं मालूम 'निराला' जी इन पंक्तियों को गद्य की भांति सीधी ही सतरों में न लिखकर कागज़ का अपव्यय क्यों करते हैं। परिमल के तीसरे खण्ड में प्रायः सभी कविताएं ऐसी ही हैं, जिनसे सम्पूर्ण पृष्ठ में केवल एक

ही दो शब्दों का उलट फेर कर देने पर वह बहुत ही सुन्दर गद्य बन जाती हैं, और गद्य की दशा में वे सभी पंक्तियां वास्तव में सराहनीय हैं। स्थानाभाव से उसमें से केवल दो-चार पंक्तियां देकर गाड़ी आगे बढ़ती है—

ईंट का जवाब हमें
पत्थर से देना है

+ + + +

निश्चय है
हिन्दुओं की लुप्त कीर्ति
फिर से जग जायगी
मुट्ठी भर उसके सहायक है
दब कर पिस जायंगे

+ + + +

लक्ष्मण—प्रलय किसे कहते हैं?

राम—मन, बुद्धि और अहंकार का नाम प्रलय है।

उपर्युक्त पंक्तियां गद्य में लिखी हैं या पद्य में इसका निर्णय विज्ञ पाठक स्वयं ही कर लें। पर मस्तराम जी इतना तो अवश्य कहेंगे कि यदि ऐसी ही कविता लिखनी है तो इससे गद्य करोड़ दर्जे अच्छा। न उसमें इतना कागज ही खर्च होगा और न मस्तिष्क ही पर अधिक जोर देना पड़ेगा।

'निराला' जी की भाषा की सुन्दरता में शंका करने का किञ्चित्मात्र भी स्थान नहीं है। आपकी शब्द-योजना तथा पद-लालित्य की छटा बड़ी ही रोचक होती है। यदि किसी को केवल शब्दों का आनन्द लेना हो तो मस्तराम जी निष्पक्ष भाव से

हाथ मारकर कह सकते हैं कि वह सिवा 'निराला' जी की कविता में और कहीं नहीं मिल सकता। कदाचित् 'पंत' जी की कविता में भी नहीं। फिर भी एक दो शब्द आपकी कविताओं में ऐसे आ ही गये हैं, जिन पर आपत्ति की जा सकती है। जैसे पञ्चवटी प्रसंग में आप लिखते हैं--

"सांवरे का अधर मधु-पान कर
सुख से बिताऊं दिन"

इसमें 'सांवरे' शब्द खटकता है। शुद्ध खड़ी बोली में इसका प्रयोग अनुचित है।

'कहता है बालक इव क्या आदेश है माता ?' 'इव' शब्द संस्कृत होते हुये भी खड़ी बोली में नहीं प्रयुक्त होता। 'इव' के स्थान पर उसी अर्थ में 'वत्' का प्रयोग किया जाता तो उसमें कहीं अच्छा था। और 'वत्' कविता के उसी प्रवाह में सरलता पूर्वक खप भी सकता था। आगे फिर--

'बँधे हो बहा दो ना
मुक्त तरङ्गों में प्राण
स्वयं बढ़ा दो ना तुम करुणा प्रेरित अपने हाथ।"

'ना' नहीं के अर्थ में नहीं प्रयोग होता है और न 'न' के ही अर्थ में। इस स्थान पर सिवा 'न' के और किसी भी शब्द का प्रयोग करना अनुचित है। फिर--

"काढ़ देना चाहते हो दक्षिणा के प्राण
भोगलों के तुम जीवन दान
काढ़ हिन्दुओं का हृदय"

इसमें भी 'काढ़' शब्द ठेठ गंवारू है। हां, अवधी भाषा में इस शब्द का प्रयोग यत्र-तत्र दिखाई देता है परन्तु खड़ी बोली में नहीं।

"सुनो अहा फूल
जब कि यहां हम हैं
फिर क्या रक्खो राम है"

या

"मनोमोहिनी है वह मनोरमा है
जलती अन्धकारमय जीवन की वह एक शमा है"

इसमें 'रंजो गम' और 'शमा' शब्द अलग ही रखे प्रतीत होते हैं, तथा इन शब्दों का 'मनोमोहिनी' 'मनोरमा' और अन्धकारमय जीवन के साथ होना घोड़ों-गधों का सा सम्बन्ध ज्ञात होता है। उर्दू-फारसी के ऐसे-ऐसे क्लिष्ट शब्दों से तो बृज भाषा के शब्दों का आ जाना लाख दर्जे अच्छा, क्योंकि वह कम से कम है तो हमारी ही वस्तु। और कुछ न सही हिन्दी तो कहलाती है। एक स्थान पर फिरः—

"दुखकी छाया पड़ी हृदय में मेरे
झट उमड़ वेदना आई,
उसके निकट गया मैं धाय
लगाया उसे गले से हाय"।

खड़ी बोली में 'धाना' कोई धातु नहीं है जिससे 'धाय' बन गया हो। हां, बृजभाषा में 'धावना' धातु है जिससे 'धावति है' या 'धावत है' रूप बन जाते हैं। यथा 'तरवारि की धार पै धावनो है' या 'जबै रथ धावत है' इत्यादि। परन्तु यहां यह शब्द

किस व्याकरण के नियम से बन गया, यह मस्तराम जी की समझ में नहीं आता। मस्तराम जी पोथियों के पन्नों को ही शहद लगा-कर चाट गये परन्तु उनकी 'विशालकाय' बुद्धि को अन्त में कुकड़ूकूँ ही बोलना पड़ा। हाँ, धाय शब्द का प्रयोग संज्ञा के रूप में अवश्य होता है। जिसके माने हैं 'नर्स'। क्या आश्चर्य कि योग्य निराला' जी ने मुक्त छन्द की भांति मुक्त व्याकरण का भी निर्माण कर डाला हो। उनके इस सराहनीयकार्य (?) के लिए मस्तराम जी खौखिया-खौखिया कर सम्पूर्ण आकाश को हिला डालने में अब कोई कसर थोड़े ही उठा रक्खेंगे ?

इसी प्रकार 'पहचाना' शीर्षक कविता में आपने लिखा है:—

तुम्हारा इतना हृदय उदार

व, क्या समझेगा माली निष्ठुर निरा गँवार—

यहाँ 'व' शब्द वह के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है, जो पूर्णतया अशुद्ध है। इस 'व' का प्रयोग तो 'अथवा' 'किम्वा' या 'वा' के अर्थ में होता है न कि 'वह' के अर्थ में। इस प्रकार की अशुद्धियां परिमल में यत्र-तत्र हैं, परन्तु बहुत कम। बल्कि इनी गिनी दो चार। जिस प्रतिभा या शक्ति से कवि उत्तमोत्तम कवितायें लिखने में समर्थ होता है, उसकी व्याख्या आचार्यों ने इस प्रकार की है—

मनसि सदा सुसमाधिनि,
विस्फुरणमनेक धामिधेयस्य।
अक्लिष्टानि पदानि च,
विभान्ति यस्यामसौ शक्तिः।

उपर्युक्त श्लोक से सिद्धि होता है कि अन्य बातों के अतिरिक्त अक्लिष्ट पदों का प्रादुर्भाव भी प्रतिभा ही द्वारा होता है। यदि कोई कठिनता रहित पदों में कविता नहीं लिख सकता, तो समझिये कि उसमें कवित्व शक्ति की कमी है, परन्तु पाठक देखें कि 'निराला' जी की निम्न पंक्तियों में कितनी क्लिष्टता आगई है:-

प्रथम विजय थी वह
भेद कर मायावरण
दुस्तर तिमिर घोर जड़ावर्त
अगणित-तरंग-भंग-
वासनायें समल-निर्मल
कर्दम मय शशि राशि
स्पृह-हित-जंगमता
नश्वर-संसार
सृष्टि-पालन-प्रलय भूमि—
दुर्दम अज्ञान राज्य
मायावृ 'मैं' परिवार-

पारावार-केलि-कौतूहल। "इत्यादि" इन पंक्तियों को समझने में मस्तिष्क पर अत्यधिक जोर देना पड़ता है, परन्तु फिर भी अर्थ पूर्णतया स्पष्ट नहीं हो पाता। अब जरा नीचे का भी एक छन्द देखिए। इसके रचयिता हैं ठाकुर गोपाल शरण सिंह जी-

लाल पीले श्वेत और नीले वस्त्र धार कर,
घर से निकल आये-फूल कहाँ जाने को।
पहने रुचिर परिधान नव पल्लवों का,
पादप खड़े हैं किसे आदर दिखाने को॥

क्यों हैं बनी ठनी लो ललित लतायें सभी,
कोयल है कूक रही किसको रिझाने को।
कौन आ रहा है मुझको भी बतला दो जरा,
वायु क्यों लुटाता है सुगन्ध के खजाने को॥

कहने का तात्पर्य यह है कि जो कविता जितनी सादी होती है, उसमें उतनी ही मिठास होती है। प्रकृति स्वयं सादगी पसन्द है फिर और किसी का क्या कहना? ठाकुर साहब के इस छन्द में यद्यपि वसन्त शब्द कहीं भी नहीं आया है, परन्तु पढ़ते ही मालूम हो जाता है कि महाराज ऋतुराज की सवारी आने वाली है। इसी को कवित्व शक्ति या प्रतिभा कहते है। इसी प्रकार की "निराला" जी की एक और कविता है 'वन कुसुमों की शैया' जिसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं:—

"त्रस्त विश्व की आंखों से बह-बहकर
धूलि धूसरित धोकर उसके चिन्ता लोल कपोल
श्वास और उच्छ्वासों की आवेग भरी हिचकी से
दलित हृदय की रुद्र अर्गला खोल
धीर करुण ध्वनि से वह,
अपनी कथा व्यथा की कह-कह कर
धारा भरती धरा धाम के दुःख अश्रु का सागर।
दाह-तपन उत्तप्त दुःख सागर जल खौल उठा
फिर बना वाष्प का काला बादल
बरसाया जब मेंह धरा की
सारी ज्वाला कर दी शीतल।
किन्तु आह क्या होती फिर भी शान्त?
नहीं, जले दिल को तो ठण्डक और चाहिए"

इन पंक्तियों का पढ़ने वाला इस लोभ से पढ़ता चला जाता है कि कदाचित् वास्तविक विषय से सम्बन्ध रखने वाली पंक्तियाँ अब आवेंगी, अब आवेंगी। परन्तु अन्त में निराश होकर बेचारा रह जाता है, ऐसी पंक्तियां पूरी कविता भर में कहीं नहीं मिलतीं।

सम्पादक जी! अब आपका अमूल्य समय और अधिक मस्तराम जी लेना नहीं चाहते। केवल कुछ पंक्तियाँ इसी प्रकार की आपके समक्ष उदाहरण स्वरूप और रखकर चिट्ठे को समाप्त कर देंगे। किन्तु साथ ही साथ आपसे भी निवेदन है कि आप 'सकल गुण निधानं वानराणामधीशं' होने के नाते, 'वह' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियों को देखकर—जो है सो—राम जी की इच्छा से—मारे खुशी के अपना हाथ ही चबा डालें तथा वह धमा चौकड़ी मचाएं कि मस्तराम जी को एकदम चूहे के बिल की ही ओर सर पर पैर रखकर भागना पड़े, उन्हें मूषिकराज की ही शरण लेनी पड़े। 'निराला' जी लिखते हैं—

"सौन्दर्य' सरोवर की वह एक तरंग,
किन्तु नहीं चंचल प्रवाह उद्दाम वेग—
संकुचित एक लज्जित गति है वह
प्रिय समीर के संग।
वह नव वसन्त की कोमल किसलयलता
किसी विटप के आश्रय में झुकलिता
और अवनता।
उसके खिले कुसुम सम्भार
विटप के गर्वोन्नत वक्षस्थल पर सुकुमार
मोतियों की मानो है लड़ी,

विजय के वीर हृदय पर पड़ी।
उसे सर्वस्व दिया है।

इस जीवन के लिये जिसे हृदय से लपेट लिया है। सम्पादक जी! आप स्वयं आंखें फाड़-फाड़ कर देखें कि जिस प्रकार से काले काले बादल आकाश मंडल को ढक लेते हैं, किसी ओर से भी स्वच्छ आकाश के दर्शन नहीं हो पाते, उसी प्रकार से यह कविता भी नाना प्रकार की उपमाओं से ढक दी गई है। उपमा दी जाती है उपमेय को पूर्णतया प्रकाश में लाने के लिये। जैसे चरणों की कोमलता सुन्दरता तथा उसकी मोहकता को साफ तौर से प्रकट करने के लिये उनको 'कमलवत्' कह दिया जाता है। 'कमलवत्' चरण सुनकर मनुष्य तुरन्त समझ जाते हैं कि वे प्रत्यक्ष कोमल हैं. तलवे अरुणिमा लिये हुये हैं। तथा उनको देखकर मन प्रसन्न हो जाता है। उपमा इसलिये नहीं दी जाती कि उससे असली वस्तु का पता ही न लगे परन्तु ऊपर की पंक्तियों में खेद के साथ मस्तराम जी को कहना पड़ता है कि वास्तविक विषय बिल्कुल अन्धकार में पड़ गया है। परन्तु हर्ष का विषय है कि इस प्रकार की कवितायें जिस दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति के साथ बढ़ी थीं, उसी प्रकार दिन पर दिन कम होती जा रही हैं। और आशा है कि ऐसी क्लिष्ट कविताओं का आगे चलकर लोप ही हो जायेगा। अस्तु परिमल में सभी प्रकार की कवितायें हैं। जहां कुछ छन्दोबद्ध भी हैं, और वे प्रायः सभी बहुत सुन्दर हैं। देखिये, निम्नलिखित कविता कितनी सुन्दर है—

"अभी न होगा मेरा अन्त।
अभी अभी ही तो आया है

मेरे वन में मृदुल वसन्त—
अभी न होगा मेरा अन्त।
अभी पड़ा है आगे सारा यौवन
स्वर्ण किरण कल्लोलों पर बहता रहता रे यह बालक मन
मेरे ही अविकसित राग से
विकसित होगा बन्धु! दिगन्त,
अभी न होगा मेरा अन्त।"

सम्पादक जी! देखा आपने इसकी प्रत्येक पंक्ति प्रत्येक शब्द में कितनी कोमलता है। अभी ही तो आया है, मेरे वन में मृदुल वसन्त तथा स्वर्ण किरण कल्लोलों पर इत्यादि पंक्तियों की सचमुच तारीफ़ नहीं हो सकती। अब जरा भिक्षुक की दयनीय दशा का भी चित्र देखिये—

"वह आता—

दो टूक कलेजे पर करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुंह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाये,
बायें से वे मलते हुए पेट चलते,
और दाहिना दया दृष्टि पाने की ओर बढ़ाए।
भूख से सूख ओंठ जब जाते
दाता-भाग्य विधाता से क्या पाते?
घूंट आँसुओं के पी जाते।

चाट रहे जूठी पत्तल कभी सड़क पर खड़े हुए
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।"

छन्दोबद्ध न होने पर भी यह कविता अच्छी बन पड़ी है। अक्लिष्ट पद न होने के कारण पढ़ने या सुनने वालों के हृदय पर अपना अटल प्रभाव डालती है। भिक्षुकों की दयनीय दशा का चित्र हमारी आँखों के सामने खिंच जाता है और शायद पाषाण हृदय भी उसको पढ़कर पिघल उठेगा। ऐसा मालूम होता है कि मानो कवि ने कसम सी खाली है कि वह पढ़ने या सुनने वालों को बिना रुलाये नहीं मानेगा। तभी तो अनाथ बालकों के हाथ से जूठी पत्तलों को कुत्तों द्वारा छीन लेने की करुणाजनक बात कही।

हां, 'टूक' और 'पछताना' शब्द बेमौके प्रयुक्त किये गये हैं। कोई पछताता तो तब है जब स्वयं किसी किये हुये कार्य में असफल होता है, दैवी गति के लिये पछताना कैसा? यदि 'निराला' जी का भिक्षुक भिक्षुक होने के कारण पछताता है तो कोई बुखार से पीड़ित मनुष्य अपने बुखार के लिये पछता सकता है या कोई अन्धा यह कहने लगे कि "मैं पछताता हूँ कि क्या मैं अन्धा हो गया।" कितना अशुद्ध है। ऐसे प्रयोगों से कवि को बचना चाहिये।

'कण' शीर्षक कविता लिखने में भी 'निराला' जी सफल हुये हैं—

"तुम हो अखिल विश्व में
या यह अखिल विश्व है तुममें
अथवा अखिल विश्व तुम एक
यद्यपि देख रहा हूँ तुममें भेद अनेक

विन्दु विश्व के तुम कारण हो
या यह विश्व तुम्हारा कारण
कार्य पंच भूतात्मक तुम हो
याकि तुम्हारे कार्य भूत गण ?
ताक रहे आकाश
बीत गये कितने दिन-कितने मास
पड़े हुए सहते हो अत्याचार
पद-पद पर सदियों के पद-प्रहार
बदले में पद के कोमलता लाते
किन्तु हाय, वे तुम्हें नीच ही हैं कह जाते !
तुम्हें नहीं अभिमान,
छूटे कहीं न प्रिय का ध्यान,
इससे सदा मौन रहते हो,
रज ! विरज के लिये ही इतना सहते हो ?"

आप स्वयं देखिए सम्पादक जी ! ऊपरी पंक्तियों में कितना मर्मभेदी उपदेश हुआ है। संसार धूलि-कण को अत्यन्त घृणित समझता है। उसे क्या मालूम कि चरणों की कोमलता इन्हीं मे बनी रहती है। इस प्रकार की इतनी तुच्छ वस्तु में परोपकार का महान बल भरा हुआ है परन्तु फिर भी उसे अभिमान छू तक नहीं गया है। प्रकृति वर्णन करने वालों के लिये वास्तव में यह पंक्तियां अनुकरणीय हैं। इसी प्रकार—

"हमें जाना है जग के पार
जहां नयनों से नयन मिलें
ज्योति के रूप सहस्र खिलें
सदा ही बहती नव रस धार
वहीं जाना इस जग के पार।

वहां नयनों में केवल प्रात,
चन्द्र ज्योत्सना ही केवल गात
रेणु छाये ही रहते पात
मन्द ही बहती सदा बयार
हमें जाना इस जग के पार।"

उपर्युक्त पंक्तियां भी बड़ी ही सुन्दर हैं। चाहे जितनी बार पढ़िये परन्तु जी नहीं भरता। हाँ, 'बयार' शब्द जरा बेतुक आ गया है।

मस्तराम जी की राय शरीफ़ में 'बयार बहना' खड़ी बोली में अच्छा नहीं मालूम पड़ता। यह शब्द ही गंवारू है। इसका प्रयोग ब्रजभाषा में भी एक प्रकार से जहां तक सम्भव हुआ कम ही किया गया है। अच्छा शेष फिर।

आपका वही
रबड़ केचुवा प्रसाद
मुक्त गली
कल्पना नगर

उन्नीसवाँ चिट्ठा

अजी सम्पाद जी !

जय चित्रगुप्त महराज की।

चौंकिये नहीं महराज ! आप भी बिना सोचे समझे शंखासुर की तरह चित्रगुप्त महराज की जय बोल दीजिये। यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं, तो 'ओ३म् चित्रगुप्ताय नमोनमः' का मंत्र जपना शुरू कर ही दीजिये। बाप रे बाप ! चित्रगुप्त महाराज की कल्पित मूर्ति के स्मरण-मात्र ही से मस्तराम जी की धोती ढीली हुई जा रही है, यदि वह साकार ही सामने आकर खड़े हो जायँ तो मस्तराज जी का तो हार्ट फेल ही हुआ समझिये। नाक के 'टुननू' पर मोटे शीशे का चश्मा, सर पर गोल टोपी चुस्त पाजामा तथा लम्बी अचकन—साक्षात् मुन्शी। दोनों कानों पर कलमें, सामने भारी दावात। उफ, याद आते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पाप-पुण्य का लेखा मजाल नहीं कि रत्ती भर फर्क पड़ जाय। बगल में यमराज का टेढ़ी-टेढ़ी सींगों वाला भैंसा तथा मोटा डण्डा। इतने पर भी मस्तराम जी चित्रगुप्त महाराज की जय न बोलें तो फिर किसकी बोलें ?

अभी उस दिन की बात है इन्हीं चित्रगुप्त महाराज के एक वंशज—लाला बुद्धिहरण जी अफीम की पीनक में हिन्दू समाज पर विशेषतः ब्राह्मण वर्ग पर ऐसे ऐसे वाक् प्रहार कर रहे थे कि सुनने वाले दांतों तले उंगली दबाते थे। लाल-लाल आंखें निकालकर बोले—'अजी इन ब्राह्मणों ने ही तो देश को तबाह कर रखा है जिस समय में देखिये, जहां देखिये ब्राह्मणों ही का बोल बाला। अजी हम न होते तो हिन्दू शब्द का 'नाम लेवा'

तक न कोई रह जाता। यह सत्य है कि हम सदैव राज्य शक्ति का ही साथ देते आये हैं। जिधर शक्ति, उधर हम। चोला बदलते तो हमको देर नहीं लगती। मुस्लमानों के राज्य-काल में हमने जैसी केंचुल बदली, क्या मजाल कि विषधर से भी विषधर वैसी सफाई से केंचुल बदल सकता हो। वेष-भूषा तो बदल ही दिया, जबान तक बदल दी। कहां की देवनागरी लिपि और कहां की 'संस्कीरत' भाषा एक दम से फारसी अरबी का जामा पहन लिया। मालूम होता था कि अभी-अभी मदीने से चले आ रहे हैं। जन्मपत्र को 'जायचा', निमन्त्रण-पत्र को 'बन्द' तथा वर को 'नौशा' तक कहने लगे। रामायण छोड़कर लैला-मजनू का गुणगान तक किया। परन्तु हमारी तकदीर! फिर भी हम दूध की मक्खी की तरह निकाल ही दिये गये। पन्त महाराज की सरकार ने तो हम मुँशियों का सर ही काट लिया। फारसी अरबी के इन बड़े-बड़े 'सार्टीफिकटों' को हम क्या अब शहद लगाकर चाटा करें? हम चित्रगुप्त के वंशजों पर हुई न यह सीधी चोट? अब आप ही बतलाइये सम्पादक जी! हमारे मुन्शी जी किसके चरणों पर अपना पंसेरा सर दे मारें?

मुन्शी बुद्धिहरण को हिन्दी भाषा से सख्त घृणा है। उनका कहना है "अजी हिन्दी भी कोई भाषा है। यह तो पुजारू पंडितों के काम की चीज है। भोले-भाले हिन्दुओं को ठगने के लिये इस भाषा का निर्माण किया है। उन पत्राधारी पंडितों को 'दक्षिणा के टकों' से काम था, अतः उन्होंने स्वार्थवश 'संस्कीरत' शब्दों को ठूँसना प्रारंभ कर दिया।" सत्य मानिये! सम्पादक जी। ब्राह्मण वर्ग को मुन्शी जी पानी पी-पी कर ऐसा कोस रहे थे कि मानो अब वे पृथ्वी पर किसी भी ब्राह्मण को रहने ही नहीं देंगे। ब्राह्मणों को स्वार्थी, देश-द्रोही, मक्कार, जालसाज,

धोखेबाज, कामचोर, झगड़ालू इत्यादि जाने किन-किन उपाधियों से विभूषित कर रहे थे।

मस्तराम जी को मुन्शी जी पर वास्तव में उस समय बड़ा तरस आया जब वे डिंडिया डिंडिया के रोने लगे। कहने लगे—"हाय रे! कहां गया वह वाजिद अली शाह का राज्य, जब देश भर में हम ही हम दिखलाई पड़ते थे। धन्य था वह राज्य, जिसमें उर्दू, फारसी तथा अरबी की क़द्र होती थी। कैसी 'शीरीं जबान' थी उर्दू भाषा, गोया उसमें से टप-टप करता हुआ रस टपक रहा हो। कैसे-कैसे उर्दू के मुशायरे होते थे, तब हमारे पूर्वजों के ठाठ-बाट देखने ही के क़ाबिल होते थे। मुसलमान बादशाह हम लोगों को पूरी-पूरी जागीरें दे दिया करते थे। जी हां, जागीरें! उन्हीं के बल पर हम लोग हर समय मूछों पर ताव देते घूमा करते थे, इस तरह से मूछें ऐंठ कर खड़ी कर देते थे कि क्या मजाल जो कुत्ते की दुम भी उसका मुकाबिला कर पाती। मुशायरों में 'गुलोबुलबुल' का ज़िक्र होता था, लैला मजनू के अफ़साने सुनने को मिलते थे तथा 'आशिक-माशूक' के चुलबुले तरानों से सारा वायुमण्डल ही भर जाता था। इन्हीं गुणों के बल पर 'उर्दू' उर्दू कहलाती थी। और आज? अजी आज की बात रहने दीजिये। इतना घोर परिवर्तन। स्मरण मात्र ही से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जिस देश का प्रधान मंत्री ही ब्राह्मण हो, उस देश में सिवा इसके और आशा ही क्या की जा सकती थी। हिन्दी हो और हिन्दी के साथ में 'संस्कीरत' भी हो। एक कोई आचार्य 'नरेन्द्र देव' जी भी हैं जब देखिये तब वे 'संस्कीरत' ही 'संस्कीरत' रटा करते हैं। अरे बाबा! छोड़िये पिंड इस 'हिन्दी-संस्कीरत' का। अरबी क्या बुरी है? उसे आप राष्ट्र-भाषा क्यों नहीं बनाते हैं? अरबी न: सही,

फ़ारसी, तुर्की, अंग्रेज़ी, फ्रेन्च, पंजाबी, बंगाली, मराठी इत्यादि संसार में अनेक भाषायें हैं, चाहे जिसे आप राष्ट्र-भाषा के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। समझ में नहीं आता इन बुद्धुओं के दिमाग़ में कौन सा कीड़ा लग गया है जो हिन्दी ही हिन्दी की रट लगाये हैं। इस गंवारू भाषा में न जाने कौन सा आनन्द आता है ? न हुआ आज मेरा राज्य जो हिन्दी को इतने गहरे में गड़वा देता है कि कहीं ढूँढने पर भी उसका पता न लगता। हिन्दी का अगर कोई शब्द भी किसी की जबान पर आता, तो उसकी ज़बान ही खिंचवा कर छोड़ता। 'हल्दी घाटी' या 'शिवा बावनी' जैसे काव्य-ग्रन्थों को फड़वाकर उनके स्थान पर 'शराब' और 'साक़ी' से ओत-पोत कविताओं के ग्रन्थ लिखवाता। 'नाजिनी' और नज़ाकत' पर जो जितना ही अधिक लिखता, उसको उतना ही अधिक पुरस्कार देता। अजी दाहिनी तरफ़ से लिखी जाने वाली 'उर्दू-बीबी' का भी मुक़ाबिला भला रांड हिन्दी कहां तक करेगी ?"

सम्पादक जी ! मुन्शी बुद्धि हरण ब्राह्मण वर्ग को तो अपना शत्रु ही समझते हैं। कारण वे जानते हैं कि यदि हिंदी न होती या हिन्दी में जागृति पैदा करने वाली कविताएं न लिखी जातीं तो देश उन्नति न कर पाता और जब देश उन्नति न कर पाता तो सदैव यहां अंग्रेजों का ही राज्य रहता। अतः ब्राह्मणों ने ही अंग्रेजों को यहां से भगाया है। जब तक अंग्रेजों का राज्य रहा तब तक मुन्शी जी अपना उल्लू सीधा करते रहे। अब उन्हें बे-मौजें नहीं हैं इसी से वे आपे से बाहर हो रहे हैं। वे समझते हैं हिन्दी मानो ब्राह्मणों ही की भाषा है।

बात-बात में वही हिन्दी-उर्दू का झगड़ा या ब्राह्मण-लाला का झगड़ा। एक दिन फर्माने लगे कि देखिए उर्दू में कितनी सुन्दर कविता लिखी जाती है—

"कहा जो मरने को मर गये हम,
कहा जो जीने को जी गये हम।
बस और क्या चाहता है जालिम,
तेरे इशारों पे चल रहे हैं" ॥

है किसी भाषा में इतना रस, है संसार में कोई भाषा जो इतनी ऊँची कविता दिखला सके। माशूक के कहते ही सट से प्राण निकल जायें और उसके कहते ही कोई फिर जिन्दा हो सके। अब जरा हिन्दी की इन पंक्तियों का मुकाबिला कीजिये—

उठ उठ रे भारत के जवान !
फिर शान्ति विश्व में लादे तू,
दुखियों के क्लेश मिटा दे तू,
है भारत का आदर्श यही,
बलि होजा शीश चढ़ादे तू,
कर याद आर्य गौरव महान,
उठ उठ रे भारत के जवान,

अब यदि किसी की गुद्दी में अक्ल है, यदि है किसी में कुछ भी बुद्धि तो हिन्दी की इन पंक्तियों का मुकाबिला पहले वाले 'शेर' से करे। कहाँ उस शेर' की नाजुक खयाली, तर्ज गुफ्तगू तथा रवानी और कहाँ हिन्दी की मरी ये पंक्तियाँ। जी हां, दुखियों के क्लेश हिन्दी ही वाले तो मिटायेंगे। फिर शान्ति सिवा ब्राह्मण महाराज के और कौन ला पायेगा? बलि हो जाने या शीश चढ़ाने की बात महाराज! आप अपने ही लिए रखिए। वह

आपही को मुबारक, कृपया आप ही आर्य बने रहिए, हमको 'आरिया सारिया' न बनाइये अजी नवजवान इस लिये होता है कि वह देश के लिए सर कटा दे ? लाहौलविला-कूवत ! तोबा ! तोबा !- यह है हिन्दी का रूप। इसी हिन्दी पर हिन्दी वालों को विशेष कर ब्राह्मण वर्ग को बड़ा नाज़ है।

सम्पादक जी ! मस्तराम जी को भय है कि इसी प्रकार की ऊटपटाँग बातें बकते-बकते लाला बुद्धि हरण जी पागल न हो जायँ। अतः मस्तराम जी की राय है कि आप पहले ही से इस की रोक थाम के लिये कोई प्रयत्न करना आरम्भ करदें। नहीं तो मस्तराम जी किसी तरफ़ के न रह जायंगे।

शेष सब चकाचक है।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

आपका वही—
मुन्शी चुलबुलप्रसाद
चिल्लपों गली,
हो-हल्ला नगर।

हिन्दी प्रचारक मंडल द्वारा प्रकाशित महत्वपूर्ण पढ़ने योग्य कुछ पुस्तकें

फेरि मिलिबो

(ले०—श्री पं० अनूप शर्मा एम० ए० एल० टी०)

काव्य योजना की दृष्टि से (फेरि मिलिबो) जैसा ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में नहीं है। इस पर देव पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। आद्योपान्त ब्रज-बोली में लिखा हुआ यह चम्पू हिन्दी-भाषा में अपना जोड़ नहीं रखता। इसमें पुनर्मिलन की विविधि अवस्थाओं की मनोवैज्ञानिक भूमिका पर प्राचीन भाषा एवं प्राचीनतम कथानक का हृदयग्राही वर्णन है। श्री कृष्ण तथा राधा के प्रेम का रहस्य नवीन कल्पनाओं तथा उद्भावनाओं के योग से दिव्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। हम काव्य-प्रेमियों से अनुरोध करते हैं कि वे इसे केवल पढ़ें ही नहीं, अध्ययन भी करें। हिन्दी की उच्च कक्षाओं में जहां ब्रज-भाषा पढ़ाई जाती हो, इस ग्रन्थ का पाठ्य-पुस्तक होना आवश्यक है। मूल्य ३) रुपया

साहित्य चिन्तन

(ले०—श्री पं० गिरिजा मोहन गौड़ 'कमलेश')
एम. ए. रिसर्च स्कालर

लेखक ने इस में अनेक सामयिक समस्याओं पर विचार किया है। विषयों के निर्वाचन में भी उन्होंने विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रक्खा है। छायावाद, यथार्थवाद, प्रतीकवाद जैसे गम्भीर विषयों पर लेखक ने अपना निजी दृष्टि-कोण प्रस्तुत किया है। सर्व श्री प्रसाद, दिनकर, अञ्चल, नरेन्द्र आदि कवियों पर जो विचार व्यक्त किये गये हैं तथा उनकी पुष्टि

में उन कवियों की जो धारणायें उद्धृत की हैं उनमें इन कवियों की विचारधारा का स्पष्ट बोध होता है। साहित्यिक लेखों के अतिरिक्त कुछ समाज की प्रवृत्तियों के अध्ययन की सामग्री भी इस पुस्तक में है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह कृति हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थियों के लिये बहुत उपयोगी है।

मूल्य ३॥) रुपया

सुख शान्ति के उपाय

इस पुस्तक में पूज्य श्री स्वामी नारदानन्द सरस्वती जी महाराज के उपदेशों को संकलित किया गया है। विभिन्न अवसरों पर दिये गये उपदेशों का यह संग्रह पाठकों को सुख और शान्ति प्रदान करेगा इसी विश्वास और भावना से हमने इसे प्रकाशित किया है।

मूल्य ॥) बारह आना

श्री राम कथा

(ले०—श्री रामदास मिश्र 'वि॰ थ')

जीवन निर्माण के लिये भारतीय धर्म संस्कृति और सभ्यता की वास्तविकता का ठीक प्रकार से बोध हो सके इसी भावना को लेकर हम भगवान श्री राम के पवित्र चरित्र को प्रस्तुत कर रहे हैं।

मूल्य १) रुपया

हमारी आजादी

(ले०—श्री पं० रमाकान्त मिश्र एम० ए०)

मानवीय स्वतंत्रता पर लिखी गई महत्वपूर्ण पुस्तक

मूल्य १॥) डेढ़ रुपया

हर प्रकार की हिन्दी पुस्तकों के थोक व फुटकर विक्रेता तथा प्रकाशक

हिन्दी प्रचारक मंडल

कैलाश भवन, पेसिंयारी मंडी, लखनऊ।